

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178823

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 33 T 12.6, Vol I

Name of Book STORY OF THE

Name of Author JOHN RUSKIN

संस्कृत
सरस्वती-सिरिज़ नं० ७४

गल्प-गुच्छ

श्रीरवोन्द्रनाथ ठाकुर



सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैन्याअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

प्रकाशक

इंडियन प्रेस लिमिटेड

प्रयाग

By S.L. & **सरस्वती-प्रसंग**

स्थायी परामशदाता—डा० भगवानदोस, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, १० द्वारिका-प्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गदं, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णु पराङ्कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, व्यौहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदमलाल पुत्रालाल बरुशो, श्री जैनेन्द्रकुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित ज्योतिष चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रामशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० रामसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री मंतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश-प्रसाद मौलवी फ़ाजिल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्रनाथ “अशक”, डा० ताराचंद, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्य-प्रकाश वर्मा, श्री अनुकुलचन्द्र मुकर्जी, रायबहादुर पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, १० सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’, डा० धोरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि ।

कहानी-संग्रह

गल्प-गुच्छ

[१]

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की सर्वोत्कृष्ट

मौलिक कहानियाँ

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

गल्प-गुच्छ

—*—

प्रथम भाग

—*:—

मुर्दे की मौत

(१)

रानीहाट के ज़मींदार शारदाशङ्कर बाबू के घर की विधवा बहू के मायके में कोई नहीं था। एक-एक करके सभी मर गये। सुसगल में भी ठीक अपना कहलाने लायक कोई न था। न पति था और न पुत्र ही था। उसके जेठ शारदाशङ्कर का एक छोटा लड़का था। उसे वह बड़ बहुत ही चाहती थी। उस लड़के के पैदा होने के बाद उसकी माँ बहुत दिनों तक बीमार रही। इस कारण उसकी विधवा चाची काद-बिबनी ने ही पाल-पोसकर उसे बड़ा किया। पराये लड़के को पाल-पोसकर बड़ा करने से उसके प्रति हृदय का स्नेह और भी अधिक होता है, क्योंकि उसके ऊपर अधिकार नहीं रहता; उसके ऊपर कोई सामाजिक दायिबा नहीं, केवल स्नेह का दावा होता है। किन्तु केवल स्नेह समाज के

आगे अपना कोई दावा प्रमाणित नहीं कर सकता और वैसा करना भी नहीं चाहता । वह केवल अनिश्चित हृदय के सर्वस्व की दूनी व्याकुलता के साथ चाहने लगता है ।

उस छोटे लड़के को अपने हृदय का सारा स्नेह देकर एक दिन सावन की रात को अकस्मात् कादम्बिनी की मृत्यु हो गई । एकाएक न जाने किस कारण से उसके हृदय की गति रुक गई—सारे जगत् के और सब काम बराबर चल रहे थे, केवल उसी स्नेह-पूर्ण हृदय की गति सदा के लिए बन्द हो गई ।

पीछे पुलीस आकर उपद्रव न करे, इसलिए अधिक आडम्बर न करके ज़मींदार के नौकर-चाकर गरीब ब्राह्मण शीघ्र ही उस मृत देह को मसान पर ले गये ।

रानीहाट का मसान बस्ती से बहुत दूर पर था । तालाब के किनारे एक भोपड़ी थी, उसके पास ही एक बड़ा सा बरगद का पेड़ था । उस भारी जङ्गल में और कुछ न था । पहले उस जगह पर नदी बहती थी । जिस समय का यह हाल लिखा जा रहा है उस समय वह नदी सूख गई थी । उसी सूखी नदी के एक अंश को खोदकर इस समय मसान का तालाब बनाया गया है । इस समय के लोग उस तालाब को एक पवित्र नदी के समान समझते थे ।

मृत देह को भोपड़ी के भीतर रखकर चिता के लिए लकड़ी आने की प्रतीक्षा में चार आदमी बैठे रहे । उन्हें लकड़ी आने में इतनी देर जान पड़ने लगी कि उनमें से दो आदमी यह देखने के लिए चले कि लकड़ी आने में इतनी देर क्यों हुई । दो आदमी लाश के पास बैठे रहे ।

सावन की अँधेरी रात थी। बादल घिरा हुआ था। आकाश में एक भी तारा नहीं देख पड़ता था। अन्धकारपूर्ण भोपड़ी में दोनों आदमी चुपचाप बैठे हुए थे। एक आदमी की चादर में दियासलाई और मोमबत्ती बँधी हुई थी। बरसात की दियासलाई बहुत चेष्टा करने पर भी नहीं जली। साथ जो लालटेन आई थी वह भी बुझ गई थी।

बहुत देर तक चुप रहने के बाद एक ने कहा—अगर एक चिलम तमाखू साथ होती तो बहुत अच्छा होता, जल्दी के मारे कुल्ला साथ नहीं लाये।

दूसरे आदमी ने कहा—मैं दौड़ा जाकर चटपट सब सामान ला सकता हूँ।

उसके भागने के इरादे को समझकर दूसरे आदमी ने कहा—वाप रे ! और मैं यहाँ अकेला बैठा रहूँगा !

फिर दोनों चुप हो रहे। एक-एक मिनट एक-एक घण्टे के बराबर जान पड़ने लगा। जो लोग लकड़ी लेने गये थे उनको ये लोग मन ही मन गालियाँ देने लगे। यह सन्देह इन लोगों के मन में धीरे-धीरे निश्चय का रूप धारण करने लगा कि उक्त दोनों आदमी कहीं आराम से बैठे मजे में तमाखू पीते और गुप-शुप लड़ाते होंगे।

कहीं कोई शब्द न था। केवल उस तालाब के समीप से उठ रहा लगातार मेंढकों और भींगुरों का शब्द सुनाई पड़ रहा था। इसी समय जान पड़ा कि लाश मानों हिली—मुर्दे ने मानों करवट बदली।

जो दो आदमी बैठे थे वे काँपते हुए भगवान् का नाम लेने लगे। एकाएक उस भोपड़ी में एक लम्बी साँस सुन पड़ी। दोनों आदमी

उसी दम भोपड़ी के भीतर से उछलकर बाहर निकले और सीधे गाँव की ओर भागे ।

डेढ़ कोस के लगभग भागकर आने पर उन्होंने देखा कि उनके दोनों साथी लालटेन हाथ में लिये लौटे आ रहे हैं । जो दोनों आदमी लकड़ियों के लिए कहकर गये थे वे सचमुच तमाखू पीने गये थे, लकड़ियों के लिए नहीं; तो भी उन्होंने अपने दोनों साथियों से कह दिया कि लकड़ियों के कुन्दे चीरे जा रहे हैं—दूकानदार मज़दूरों के हाथ अभी भेजता है । तब जो दो आदमी भोपड़ी में मुर्दे को हिलते देख डरकर भाग खड़े हुए थे उन्होंने अपने साथियों से मुर्दे के हिलने-डुलने और लम्बी साँस लेने का हाल कहा । जो लकड़ी लेने गये थे उन्होंने अविश्वास करके उस बात को उड़ा दिया और अपने काम को छोड़कर मसान में भाग आने के लिए उन्हें डाँटने लगे ।

उसी समय चारों आदमी मसान में उसी भोपड़ी में जाकर पहुँचे। भोपड़ी के भीतर जाकर देखा, लाश का पता नहीं है, खाली खटिया पड़ी हुई है ।

सब लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे । अगर सियार घसीट ले गये हों ? लेकिन लाश के ऊपर का कपड़ा भी तो नहीं है । पता लगाते-लगाते बाहर जाकर देखा, भोपड़ी के द्वार के पास गीली ज़मीन में औरत के छोटे-छोटे ताज़े चरण-चिह्न अङ्कित हैं ।

शारदाशङ्कर सहज आदमी नहीं हैं । उनसे इस भौतिक काण्ड का वर्णन करने से कोई शुभ फल पाने की सम्भावना नहीं । तब चार

आदमियों ने सलाह करके यह निश्चय किया कि लाश जला दी गई, यह खबर देना ही अच्छा है।

सवेरे के लगभग लकड़ियाँ लेकर जो लोग आये उनको खबर मिली कि बहुत देर होते देखकर पहले ही काम समाप्त कर दिया गया है, उस भोपड़ी में लकड़ियाँ रखी थीं। इस सम्बन्ध में एकाएक सन्देह उपस्थित नहीं हो सकता—क्योंकि मृत देह ऐसी कोई बहुमूल्य सम्पत्ति नहीं कि कोई थोखा देकर उसे चुरा ले जाय।

(२)

इस बात को बहुत लोग जानते हैं कि जब जीवन का कोई लक्षण नहीं पाया जाता तब भी अक्सर प्रच्छन्न रूप से शरीर में जान बनी रहती है और यथासमय फिर उस मुर्दा से शरीर में प्राण की क्रिया आरम्भ हो जाती है। कादम्बिनी भी मरी न थी— एकाएक किसी कारण से उसके जीवन की क्रिया बन्द हो गई थी।

जब वह सचेत होकर उठी तब उसने अपने चारों ओर घोर अन्धकार देखा। सदा के अभ्यास के अनुसार उसे अन्धकार में भी यह मालूम हो गया कि यह उसका घर नहीं है। एक बार उसने अपनी जेठानी को “जीजी” कहकर पुकारा लेकिन उस अन्धकार में कुछ उत्तर न मिला। डर के मारे वह उसी खटिया पर उठकर बैठ गई—उसे वही मृत्यु-शय्या की बात याद आ गई। वही एकाएक ल्हाती के पास एक वेदना—श्वासरोध का उपक्रम उसे स्मरण हो आया। उसकी जेठानी घर के कोने में बैठी बच्चे के लिए दूध गर्म कर रही थी—वेदना के मारे

कादम्बिनी से खड़े नहीं रहा गया, वह पछाड़ खाकर बिछौने के ऊपर गिर पड़ी। उसने हँधे हुए स्वर से कहा—जीजी, तनिक बच्चे को ले आओ, मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है। इसके बाद चारों ओर मानों अन्धकार छा गया, मानों किसी लिखी हुई कापी पर दावात उलट पड़ी। कादम्बिनी की सारी स्मृति और चेतना—विश्वग्रन्थ के सब अक्षर—दमभर में एकाकार हो गये। इस समय कादम्बिनी को यह भी स्मरण नहीं कि उस समय बच्चे ने आकर उसे स्नेह-पूर्ण स्वर से चाची कहकर पुकारा था या नहीं।

पहले कादम्बिनी को जान पड़ा कि यमपुरी शायद ऐसी ही सुनमान और अन्धकारमयी है। वहाँ कुछ भी देखने-सुनने की चीज़ नहीं है, न कोई काम ही करने का है। केवल इसी तरह उठकर जागकर घैटे रहना होता है।

उसके बाद जब खुले हुए द्वार से एकाएक ठण्डी हवा का एक झोंका आया और मेंढकों का शब्द सुन पड़ा तब उसे वर्षा का स्मरण हो आया और उसने पृथ्वी के निकट स्पर्श का अनुभव किया। एक बार बिजली चमक उठी। सामने तालाब, बरगद का पेड़, भारी मैदान और वृक्षों की कतार देख पड़ी। उसे स्मरण हो आया कि कभी-कभी पुण्य-तिथियों में वह इसी तालाब में नहाने आ चुकी है। उस समय इसी मसान में मृतदेह देखकर उसे मृत्यु कैसी भयानक जान पड़ती थी।

पहले उसने सोचा कि घर लौट जाऊँ, किन्तु उसी समय फिर यह खयाल आया कि मैं तो मर चुकी हूँ, मुझे कोई घर में न रखेगा।

मेरे वहाँ जाने से लोगों के अमङ्गल की आशङ्का होगी। जीव-राज्य से मैं तो सदा के लिए निर्वासित हो चुकी—मैं तो अब प्रेत हूँ।

अगर ऐसा न होता तो वह इस आधी रात के शारदाशङ्कर के सुरक्षित अन्तःपुर से इस दुर्गम मसान में कैसे आती? अगर अभी उसका दाहकर्म नहीं हुआ तो दाह करनेवाले लोग कहाँ गये? शारदाशङ्कर के प्रकाशपूर्ण घर में उसे अपनी मृत्यु की अन्तिम घड़ी स्मरण हो आई। उसके बाद ही गाँव से बहुत दूर पर निर्जन अन्धकार-पूर्ण मसान में अपने को अकेले देखकर उसने जाना कि अब इस पृथ्वी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है—मैं अत्यन्त भयानक, अकल्याण-रूप अपनी प्रेतात्मा हूँ !

यह बात मन में आते ही उसे जान पड़ा कि उसके चारों ओर से विश्व के नियमों के सभी बन्धन मानों कट गये। मानों उसे अद्भुत शक्ति और असीम स्वाधीनता प्राप्त हो गई है। वह जो चाहे कर सकती है, जहाँ चाहे जा सकती है। इस अभूतपूर्व नवीन भाव के आविर्भाव में वह पागल की तरह होकर उस भोपड़ी से निकलकर उसी अन्धकार में चल दी। मन में लजा, भय और चिन्ता का लेश भी नहीं रहा।

चलते-चलते पैर थक गये, देह कमजोर होने लगी। किसी तरह वह भारी मैदान समाप्त ही नहीं होता। बीच-बीच में धान के खेत और पानी भरा हुआ मिलता था। जब थोड़ा-थोड़ा सबेरे का प्रकाश हुआ तब पास ही बस्ती के चिह्न देख पड़े और पक्षियों का शब्द सुन पड़ा।

तब उसे एक प्रकार का भय मालूम पड़ने लगा । वह यह कुछ भी नहीं जानती कि पृथ्वी के साथ, जीवित मनुष्यों के साथ, इस समय उसका कैसा सम्बन्ध है । जब तक वह मैदान में थी, मसान में थी, रात के अन्धकार में थी, तब तक मानों वह निर्भय थी—अपने राज्य में थी । दिन के प्रकाश में आदमियों की वस्ती उसे अत्यन्त भयङ्कर स्थान जान पड़ने लगी । मनुष्य भूत को डरता है, और भूत भी मनुष्य को डरता है—मृत्यु-नदी के दोनों किनारों पर दोनों रहते हैं ।

(३)

कादम्बिनी के कपड़ों में कीचड़ भरा हुआ था । अद्भुत भाव के आवेश और रात के जागने से वह पागल सी हो रही थी । उसका चेहरा देखकर लोग सचमुच ही डर सकते थे । शायद गाँव के लड़के उसे देखकर पागल समझकर दूर से ढेले भी मारते । किन्तु सौभाग्य-वश सबसे पहले एक राह-चलते भले आदमी ने उसे इस अवस्था में देखा ।

उस भले आदमी ने पास आकर कादम्बिनी से कहा—आप किसी भले घर की बेटा-बहू जान पड़ती हैं; इस अवस्था में इस तरह अकेले कहाँ जा रही हैं ?

कादम्बिनी ने पहले कुछ उत्तर नहीं दिया, उसकी ओर ताकने लगी । एकाएक वह कुछ नहीं समझ सकी । वह संसार में है, वह भले आदमी की बेटा-बहू जान पड़ती है, राहगीर उससे यह प्रश्न करता है, वे सब बातें उसे स्वप्न के समान मिथ्या जान पड़ने लगीं ।

पथिक ने फिर उससे कहा—चलो बेट्टी, मैं तुमको तुम्हारे घर पहुँचा दूँ। तुम्हारा घर कहाँ है ?

कादम्बिनी सोचने लगी। समुगल जाना तो हो नहीं सकता, और मायके में कोई है ही नहीं। तब उसे अपने लड़कपन की सखी का स्मरण हुआ।

सखी योगमाया के साथ यद्यपि लड़कपन में ही वह बिछुड़ चुकी है तथापि बीच-बीच में वह कादम्बिनी को चिठी लिखती थी और कादम्बिनी भी उसे चिठी लिखती थी। कभी-कभी चिठी-पत्री के द्वारा प्रेम की लड़ाई भी हुआ करती थी। कादम्बिनी यह जताना चाहती थी कि वह योगमाया को बहुत चाहती है और योगमाया यह जताना चाहती थी कि वह कादम्बिनी को बहुत चाहती है। इसमें किसी को रस्ती भर भी सन्देह न था कि किसी मौके पर दोनों का मिलन होने पर कोई भी किसी को घड़ी भर के लिए आँख-थोटा नहीं कर सकेगा।

कादम्बिनी ने उस भद्र पुरुष से कहा—निशिन्दापुर में श्रीपतिचरण बाबू के घर जाऊँगी।

वह पथिक कलकत्ते जा रहे थे। निशिन्दापुर यद्यपि निकट न था, तथापि उनकी राह में ही पड़ता था। उस भले आदमी ने स्वयं प्रयत्न करके कादम्बिनी को श्रीपतिचरण बाबू के घर पहुँचा दिया।

दोनों सखियाँ बहुत दिनों के बाद मिलीं। पहले पहचानने में कुछ देर हुई, किन्तु थोड़ी ही देर में दोनों ने दोनों को अच्छी तरह पहचान लिया।

योगमाया ने कहा—आज हमारे बड़े भाग्य हैं ! तुम्हारे दर्शन पाने की तो मुझे कोई आशा ही न थी । लेकिन तुम यहाँ किस तरह आईं ? तुम्हारी सुसराल के लोगों ने क्या तुमको छोड़ दिया ?

कादम्बिनी चुप रही ; अन्त को कहा—बहन, सुसराल की कुछ बात तुम मुझसे न पूछो । मुझे दासी की तरह अपने यहाँ रहने दो, मैं तुम्हारा सब काम करूँगी ।

योगमाया ने कहा—वाह जी, यह क्या बात है ! दासी की तरह क्यों रहोगी ! तुम मेरी सखी हो, तुम मेरी—इत्यादि ।

इसी समय श्रीपति बाबू घर में आये । कादम्बिनी दम भर उनके चेहरे की ओर ताककर धीरे-धीरे वहाँ से दूसरी दालान में चली गई । उसने न तो घूँघट काढ़ा और न किसी तरह के सङ्कोच या लज्जा का लक्षण दिखाया ।

कहीं उसकी सखी के विरुद्ध श्रीपति कुछ झगाल न कर बैठें, इसलिए व्यस्त होकर योगमाया ने तरह-तरह से उन्हें समझाना शुरू किया । किन्तु इतना कम समझाना पड़ा और श्रीपति ने इतने सहज में योगमाया की सब बातों को मान लिया कि उससे योगमाया अपने मन में विशेष सन्तुष्ट नहीं हुई ।

कादम्बिनी सखी के घर तो आई, लेकिन उससे अच्छी तरह हिल-मिल नहीं सकी, बीच में मृत्यु का व्यवधान था । अपने सम्बन्ध में सदा एक प्रकार का सन्देह और झगाल रहने से दूसरे के साथ हिलना-मिलना असम्भव हो जाता है । कादम्बिनी योगमाया के मुँह की ओर ताकती है और न जाने क्या सोचती है—वह समझती है कि स्वामी

और गृहस्थी को लेकर योगमाया मानों बहुत दूर पर दूसरे जगत् में है। स्नेह, ममता और कर्त्तव्य से युक्त वह मानों पृथ्वी पर का जीव है और कादम्बिनी मानों शून्य छाया है। योगमाया मानों अस्तित्व का देश है और कादम्बिनी मानों अनन्त में लीन है।

योगमाया को भी कादम्बिनी का रहना न जाने कैसा लगा। वह खुद भी उसे कुछ नहीं समझ सकी। स्त्रियों का स्वभाव होता है कि वे किसी बात का छिपाना नहीं सह सकतीं। क्योंकि अनिश्चित को लेकर कविता की जा सकती है, बहादुरी दिखलाई जा सकती है, पांडित्य प्रकट किया जा सकता है, किन्तु गृहस्थी नहीं की जा सकती। इसी लिए स्त्री-जाति जिसे समझ नहीं पाती उसके अस्तित्व को लुप्त करके या तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती और या उसे अपने हाथ से नया रूप देकर अपने व्यवहार के योग्य वस्तु बना लेती है। यदि इन दो बातों में से कोई बात नहीं कर सकती तो उसके ऊपर खीझ उठती है।

कादम्बिनी जितना ही योगमाया के लिए एक पहेली के समान दुबोंध होने लगी उतना ही योगमाया की खीझ भी उसके ऊपर बढ़ने लगी। उसने सोचा, यह कौन बला मैंने अपने सिर पर ले ली।

इस पर एक और आफत यह थी कि कादम्बिनी आप ही अपने को डरती थी। वह अपने पास से आप ही मानों भागना चाहती है, पर भागकर जा नहीं सकती। जो भूत को डरते हैं उन्हें अपने पीछे भय जान पड़ता है—जहाँ दृष्टि नहीं पहुँचती वहीं भय होता है। किन्तु, कादम्बिनी मानो अपने को ही डरती थी, बाहर से उसे कुछ भय न था।

इसी कारण कभी-कभी दीपहर को सूनी कोठरी में पड़े पड़े वह चिन्ता उठती थी और शाम को दीपक के प्रकाश में अपनी परछाईं देखकर उसके रोंगटे खड़े हो आते थे ।

उसके इस भय को देखकर घर के लोगों के मन में भी एक प्रकार का भय उत्पन्न हो गया था । नौकर-चाकर और योगमाया को भी जहाँ-तहाँ भूत देख पड़ने लगा ।

एक दिन ऐसा हुआ कि कादम्बिनी आधी रात को अपनी कोठरी से उठकर रोती हुई एकदम योगमाया के कमरे के द्वार पर आकर उपस्थित हुई और बोली—बहन, बहन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अकेले मुझसे रहा नहीं जाता ।

योगमाया को जैसे डर लगा वैसे ही क्रोध भी चढ़ आया । इच्छा हुई कि उसी घड़ी कादम्बिनी को अपने घर से निकाल दे । किन्तु दयालु श्रीपति ने बहुत समझा-बुझाकर उसे ठण्डा किया और अपने कमरे के पास की कोठरी में कादम्बिनी के रहने का प्रबन्ध कर दिया ।

दूसरे दिन असमय में ही श्रीपति का भीतर बुलौआ हुआ । योगमाया ने अकस्मात् उन्हें बकना शुरू कर दिया । कहा—तुम कैसे आदमी हो ! एक औरत अपनी सुसराल से निकलकर तुम्हारे घर में आकर रही है, महीने भर से अधिक हुआ, मगर तब भी वह जाने का नाम नहीं लेती और तुम उसमें ज़रा भी आपत्ति नहीं करते । तुम्हारे मन में क्या है ? मर्द लोग ऐसे ही होते हैं ।

सचमुच साधारण स्त्रीजाति के ऊपर मर्दों का एक प्रकार का बिना विचार का पक्षपात होता है और उसके लिए स्त्रियाँ ही उन्हें अधिक

अपराधी प्रमाणित करती हैं। सहायहीन अथच सुन्दरी कादम्बिनी के प्रति श्रीपति की दया उचित मात्रा से कुछ अधिक थी; इसके विरुद्ध वे योगमाया के सिर पर हाथ रखकर क्लृप्त खाने के लिए तैयार थे। तथापि उनके व्यवहार से उनके कहने का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता था।

श्रीपति समझते थे कि सुसराल के लोग अवश्य ही इस पुत्र-हीन अथवा के ऊपर किसी तरह का अत्याचार करते थे। उस अत्याचार को न सह सकने के कारण ही कादम्बिनी ने मेरे घर में आकर आश्रय लिया है। इसके माँ-बाप कोई नहीं हैं। तब मैं भी इसे किस तरह त्याग दूँ! इसी कारण अब तक उन्होंने कादम्बिनी की सुसराल में न तो खबर भेजी और न कुछ पता लगाया। कादम्बिनी से भी यह अप्रीतिकर प्रश्न करके उसे व्यथा पहुँचाने के लिए उनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी।

इसी समय उनकी स्त्री अनेक प्रकार से चोट पहुँचाकर उनकी कर्तव्यबुद्धि को सजग करने की चेष्टा करने लगी।

श्रीपति इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि अपने घर की शान्ति बनाये रखने के लिए कादम्बिनी की सुसराल में खबर देना परम आवश्यक है। अन्त को उन्होंने स्थिर किया कि एकाएक चिट्ठी लिखने से उसका अच्छा फल नहीं भी हो सकता है। अतएव रानीहाट में खुद जाकर अनुसन्धान करके कर्तव्य निश्चित करना ठीक होगा।

उधर श्रीपति रानीहाट गये और इधर योगमाया ने आकर कादम्बिनी से कहा—सखी, अब यहाँ तुम्हारा रहना अच्छा नहीं। लोग क्या कहेंगे!

कादम्बिनी ने गम्भीर भाव से योगमाया की ओर देखकर कहा—
लोगों के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ?

यह उत्तर सुनकर योगमाया सन्नाटे में आ गई। कुछ खीझकर उसने कहा—तुम्हारा सम्बन्ध न हो, लेकिन हमारा तो है। हम पराये घर की बहू-बेटी को किस तरह क्या कहकर अपने घर में रख सकती हैं ?

कादम्बिनी ने कहा—मेरी सुसराल अब कहाँ है ?

योगमाया ने कहा—बाप रे ! तू कहती क्या है ?

कादम्बिनी ने धीरे-धीरे कहा—मैं क्या तुम लोगों की कोई हूँ ? मैं क्या इस पृथ्वी पर का जीव हूँ ? तुम लोग हँसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, सब अपने-अपने लोगों के साथ सुख-दुःख भोगते हो, और मैं केवल तुम लोगों को ताकती रहती हूँ। तुम मनुष्य हो और मैं छाया हूँ ! कुछ मेरी समझ में नहीं आता कि भगवान् ने मुझे तुम्हारे इस संसार के बीच में क्यों रक्खा है।

इस तरह योगमाया की ओर देखकर कादम्बिनी ने ये बातें कही कि योगमाया ने और ही कुछ समझा। किन्तु असल बात उसकी समझ में नहीं आई। वह जवाब भी नहीं दे सकी और दुबारा कुछ प्रश्न भी नहीं कर सकी। मुँह फुलाकर गम्भीर भाव से वहाँ से चली गई।

(४)

रात के दस बजे होंगे जब श्रीपति रानीहाट से लौट आये। उस समय मूसलधार पानी बरस रहा था। वर्षा के अविराम शब्द से जान पड़ता था कि न वर्षा का अन्त होगा और न रात समाप्त होगी।

योगमाया ने पूछा—क्या हुआ ?

श्रीपति ने कहा—बहुत सी बातें हैं । पीछे कहूँगा ।

अब उन्होंने कपड़े उतारे, भोजन किया । फिर लेटकर तमाखू पीने लगे । उनके चेहरे पर अत्यन्त चिन्ता का भाव झलक रहा था ।

योगमाया बहुत देर से अपने कौतूहल को दबाये हुए थी । पति के पास आते ही उसने पूछा—कहो, क्या सुना ?

श्रीपति ने कहा—तुमने ज़रूर भूल की है ।

सुनकर योगमाया अपने मन में खीझ उठी । औरतें कभी भूल नहीं करतीं । और अगर भूल करें भी तो किसी बुद्धिमान् पुरुष को उसका उल्लेख कभी नहीं करना चाहिए । उस भूल को अपने सिर पर ले लेना ही युक्ति-सङ्गत है ।

योगमाया ने कुछ गर्म होकर कहा—कैसी भूल ! ज़रा मैं भी तो सुनूँ ।

श्रीपति ने कहा—जिस स्त्री को तुमने अपने घर में रक्खा है वह तुम्हारी सखी कादम्बिनी नहीं है ।

ऐसी बात सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है । खासकर अपने पति के मुँह से सुनकर किस स्त्री को बुरा न लगेगा ? योगमाया ने कहा—क्या खूब, मैं अपनी सखी को नहीं पहचानती, तुम्हारे पहचनवाने से पहचानूँगी !

श्रीपति ने समझाया कि मैं यह नहीं कहता कि तुम अपनी सखी को नहीं पहचानती, मैं पहचानता हूँ । प्रमाण पर तो विश्वास करना ही होगा । तुम्हारी सखी कादम्बिनी मर चुकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

योगमाया ने कहा—ज़रा इनकी बातें तो सुनो ! तुम ज़रूर ग़लती कर आये हो । जहाँ जाना था वहाँ न जाकर और कहीं गये हो और यह ग़प सुन आये हो । तुमसे खुद जाने के लिए किसने कहा था ! एक चिट्ठी लिखकर भेज देने से ही तो सब मामला साफ़ हो जाता ।

अपनी कार्यकुशलता पर स्त्री के इस अविश्वास से अत्यन्त उदास होकर श्रीपति बाबू विस्तृत रूप से संगृहीत प्रमाणों का प्रयोग करने लगे—किन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ । दोनों ओर से हाँ, ना, होते-होते आधी रात बीत गई ।

यद्यपि कादम्बिनी को उसी घड़ी घर से निकाल देने के बारे में स्वामी और स्त्री दोनों का मत मिलता था—क्योंकि श्रीपति का विश्वास था कि वह स्त्री कादम्बिनी बनकर यहाँ रहती है और उसने योगमाया को धोखा दिया है; और योगमाया का विश्वास था कि कादम्बिनी कुपथगामिनी होकर घर से निकल आई है—तथापि उपस्थित तर्क के सम्बन्ध में कोई भी हार न मानता था । श्रीपति कहते थे, वह कादम्बिनी नहीं है और योगमाया कहती थी कि वह कादम्बिनी ही है

दोनों की आवाज़ धीरे-धीरे ऊँची हो चली । उन्हें यह बात भूल गई कि पास ही की कोठरी में कादम्बिनी सो रही है ।

श्रीपति ने कहा—बड़ी मुश्किल है, मैं खुद सुन आया हूँ कि कादम्बिनी मर चुकी है ।

योगमाया ने कहा—मैं कैसे मानूँ ? मेरी आँखों के आगे वह तो जीती-जागती मौजूद है ।

अन्त को योगमाया ने पूछा—अच्छा कादम्बिनी कब मरी थी ?

उसने सोचा कि कादम्बिनी की किसी चिढ़ी की तारीख के साथ उसके मरने की तारीख का अनैक्य दिखाकर मैं पति के भ्रम को प्रमाणित कर दूँगी ।

श्रीपति ने कादम्बिनी के मरने की जो तारीख बतलाई उनसे हिसाब करके दोनों ने देखा कि जिस दिन शाम को कादम्बिनी उनके घर आई थी उसके ठीक एक दिन पहले उसके मरने की तारीख थी ! सुनते ही योगमाया का कलेजा धक से हो उठा, श्रीपति के भी रोंगटे खड़े हो आये ।

इसी समय योगमाया के कमरे का दरवाज़ा खुल गया, हवा के एक झोंके से भीतर का चिराग़ बुझ गया । कमरे भर में अन्धकार छा गया । कादम्बिनी एकदम कमरे के भीतर आकर-खड़ी हो गई । उस समय ढाई पहर के लगभग रात बीती होगी । बाहर ज़ोर से पानी पड़ रहा था ।

कादम्बिनी ने कहा—बहन, मैं तुम्हारी सखी कादम्बिनी ही हूँ; किन्तु अब मैं ज़िन्दा नहीं, मर चुकी हूँ ।

योगमाया डर के मारे चिल्ला उठी—श्रीपति के मुँह से कोई बात नहीं निकली ।

कादम्बिनी फिर कहने लगी—किन्तु मरने के सिवा मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है ! मुझे अगर इस लोक में भी जगह नहीं है और परलोक में भी स्थान नहीं है तो बतलाओ मैं कहाँ जाऊँ ।

तीव्र कण्ठ से चिल्लाकर बरसात की रात में सोते हुए विधाता को मानों जगाकर कादम्बिनी ने कहा—तो बतलाओ, मैं कहाँ जाऊँ ।

इतना कहकर, मूर्च्छित स्त्री-पुरुष को उसी अँधेरे घर में छोड़कर, इस विश्व में कादम्बिनी अपने लिए स्थान खोजने चल दी ।

(५)

यह बतलाना कठिन है कि कादम्बिनी किस तरह रानीहाट को लौट गई । वह रानीहाट में पहुँचकर दिन भर भूखी-प्यासी गाँव के निकटवर्ती एक टूटे-फूटे मूर्तिहीन मन्दिर में छिपी बैठी रही ।

बरसात की अकाल-सन्ध्या जब अत्यन्त घनी हो आई और निकट-वर्ती दुर्योग की आशङ्का से जब गाँव के लोग अपने अपने घर में किवाड़े बन्द करके बैठ रहे तब कादम्बिनी उस मन्दिर से निकली । सुसराल के द्वार पर पहुँचते ही एक बार उसका हृदय धड़क उठा, किन्तु लम्बा घूँघट काढ़कर जब वह भीतर घुसी तब गाँव की कोई स्त्री समझकर द्वार पर किसी ने उससे कुछ नहीं पूछा । इसी समय पानी और भी ज़ोर से पड़ने लगा और हवा भी खूब ज़ोर से चलने लगी ।

उस समय घर की मालकिन, शारदाशङ्कर की स्त्री, अपनी विधवा ननद के साथ चौपड़ खेल रही थीं । दासी और रोटी बनानेवाली महराजिन रसोईवाले घर में थीं । बीमार बच्चा ज्वर उतर जाने पर पड़ा हुआ सो रहा था । कादम्बिनी सबकी नज़र बचाकर उस बच्चे के पास पहुँची । मालूम नहीं, वह क्या सोचकर सुसराल आई थी । वह भी शायद इस बात को न जानती थी । शायद एक बार अपने हाथ के पले बच्चे को देखने की इच्छा ही उसे घसीट लाई थी । उसके बाद कहाँ जाना होगा, क्या करना होगा, इस पर उसने कुछ भी विचार नहीं किया था ।

दीपक के प्रकाश में उसने देखा, रोगी दुर्बल बच्चा पड़ा सो रहा है । देखकर कादम्बिनी का उत्तम हृदय मानों प्यासा हो उठा । उसे एक

बार उठाकर छाती से लगाये और प्यार किये बिना कादम्बिनी से नहीं रहा गया । उसके बाद कादम्बिनी ने सोचा, मैं नहीं हूँ, इस बच्चे को देखनेवाला—इसकी खैर-खबर लेनेवाला और कौन है । इसकी मा खल-तमाशे और बातचीत के आगे और कुछ नहीं देखती । यह बच्चा मुझे सौंपकर वह इसकी ओर से बिल्कुल निश्चिन्त थी । मैंने ही पाल-पोसकर इसे इतना बड़ा किया है । अब कौन इसका ताक लेगा ?

इसी समय एकाएक करवट बदलकर, अर्धनिद्रित अवस्था में, वह बालक कह उठा—चाची, पानी दे । कादम्बिनी अपने मन में कहने लगी—मेरा बच्चा अभी तक मुझको नहीं भूला । कादम्बिनी ने जल्दी से गिलास में सुराही से पानी उड़ेली और बच्चे को गोद में लेकर पानी पिलाया ।

जब तक नींद की खुमारी थी तब तक तो सदा के अभ्यास के अनुसार चाची के हाथ से पानी पीने में बच्चे को कुछ आश्चर्य नहीं हुआ । अन्त में कादम्बिनी ने जब उसे फिर सुला दिया तब उसकी नींद खुल गई । वह चाची से लिपटकर बोला—चाची, तू मर गई थी ?

चाची ने कहा—हाँ बच्चा ।

बच्चे ने कहा—अब तू फिर आ गई है ? अब तो तू न मर जायगी ?

इसका उत्तर देने के पहले ही भारी गोलमाल मच गया । दासी सागूदाना बनाकर बालक को देने आई । एकाएक सागूदाना फेंककर "देया रे !" कहकर वह गिर पड़ी ।

उसकी चिल्लाहट सुनकर घर की मालकिन चौपड़ फेंककर वहाँ दौड़ आई । वहाँ का दृश्य देखकर वे एकदम काठ के ठूँठ की तरह खड़ी रह गई । न तो वे भाग सकीं और न कुछ कह सकीं !

यह सब देखकर बच्चा भी डर गया । उसने रोकर कहा—चाची, तू जा ।

कादम्बिनी को बहुत दिनों के बाद यह अनुभव हुआ कि वह मरी नहीं है । वही पुराना घर-द्वार है । वही सब है, वही बच्चा है, वही स्नेह है । उसके लिए सब कुछ सजीव है । उसके और इन सब चीजों के बीच में कोई बाधा और अन्तर नहीं है । सखी के घर जाकर उसने यह अनुभव किया था कि वह मर गई है । बच्चे के घर आकर उसने देखा और समझा कि वह मरी नहीं, ज़िन्दा है ।

व्याकुल होकर कादम्बिनी ने अपनी जेठानी से कहा—जीजी, मुझे देखकर तुम क्यों डर रही हो ! मैं तो वही जीती-जागती हूँ ।

शारदाशङ्कर की स्त्री खड़ी नहीं रह सकी । मूर्छित होकर गिर पड़ी ।

बहन से खबर पाकर शारदाशङ्कर बाबू खुद घर के भीतर आकर उपस्थित हुए । उन्होंने हाथ जोड़कर कादम्बिनी से कहा—बहू, क्या तुमको यही चाहिए ? यह बच्चा ही हमारे वंश में है । इस पर तुम्हारी दृष्टि क्यों है ? हम क्या तुम्हारे कोई ग़ैर हैं ? तुम्हारे मरने के बाद से वह दिन-दिन सूखा जा रहा है, उसकी बीमारी नहीं छूटती । वह दिन-रात चाची-चाची किया करता है । जब तुम संसार से चली गईं तब यह माया-ममता छोड़ देना ही तुमको उचित है । हम तुम्हारी गया करा देंगे ।

अब कादम्बिनी से रहा नहीं गया । उसने तीव्र स्वर से कहा—मैं मरी नहीं हूँ; जीती-जागती हूँ । मैं तुमको किस तरह समझाऊँ कि मैं मरी नहीं हूँ ! यह देखो—

इतना कहकर उसने लोटा उठाकर सिर में मारा । सिर फट गया और रुधिर बहने लगा ।

फिर उसने कहा—देखो, मैं जीती-जागती हूँ ।

शारदाशङ्कर काठ के पुतले की तरह खड़े रहे । बच्चा डर के मारे दादा-दादा कहकर बाप को पुकारने लगा । दोनों बेहोश औरतें ज़मीन पर पड़ी हुई थीं ।

होश आने पर कादम्बिनी “मैं मरी नहीं, मैं मरी नहीं” कहकर चिल्लाती हुई घर से बाहर निकली और बाहर के तालाब में जाकर कूद पड़ी । शारदाशङ्कर को भीतर से उसके गिरने का धमाका सुन पड़ा ।

रात भर पानी बरसता रहा । उसके दूसरे दिन भी पानी का बरसना बन्द नहीं हुआ । इस प्रकार मरी हुई कादम्बिनी ने फिर मरकर यह प्रमाणित कर दिया कि वह मरी नहीं थी ।

सुधा

कान्तिचन्द्र की अवस्था थोड़ी है, तथापि स्त्री के मरने के उपरान्त द्वितीय स्त्री का अनुसन्धान न करके पशु-पक्षियों के शिकार में ही उन्होंने अपना मन लगाया । उनका शरीर लम्बा, पतला, दृढ़ और हलका था । दृष्टि तीक्ष्ण थी । निशाना कभी चूकता न था । बङ्गाली होने पर भी उनका पहनावा युक्त-प्रान्त के लोगों का सा था । उनके साथ पहलवान हीरासिंह, छक्कनलाल और गाने-बजानेवाले उस्ताद खाँ साहब, मियाँ साहब आदि अनेक लोग रहते हैं । बेकार मुसाहबों की भी कमी नहीं है ।

दो-चार शिकारी बन्धु-बान्धवों को लेकर अगहन के महीने में कान्ति चन्द्र नैदीघो की नदी के किनारे शिकार करने के लिए गये । नदी के बीच दो बड़ी नावों में उनका निवास हुआ । और भी दो-चार नावें उनके साथ थीं । उनमें नौकर-चाकरों और मुसाहबों का डेरा था । गाँव की बहू-बेटियों का पानी भरना और नहाना-धोना एक प्रकार से बन्द सा हो गया । दिन भर बन्दूक की आवाज़ से जल-स्थल काँपा करता था और शाम को उस्तादों की तान से गाँव के लोगों की नींद हराम हो रही थी ।

एक दिन सबरे कान्तिचन्द्र अपने बजरे में बैठे अपने हाथ से बन्दूक का चोंगा साफ़ कर रहे थे । इसी समय पास ही बत्तख की आवाज़ सुनकर आँख उठाकर उन्होंने देखा, एक बालिका दोनों हाथों से दो

वृत्तान्तों को छाती से लगाये हुए घाट पर लिये खड़ी है। नदी छोटी थी, उसमें प्रवाह मानों था ही नहीं। जगह-जगह पर तरह-तरह की सेवार फैली हुई थी। वह लड़की दोनों वृत्तान्तों को पानी में छोड़कर, एकदम वे हाथ से निकलकर दूर न चले जायँ, इस प्रकार के वस्तु सतर्क स्नेह के भाव से उन्हें पास ही रखने की चेष्टा करने लगी। जान पड़ा कि और दिन वह अपनी वृत्तान्तों को पानी में छोड़कर चली जाती थी, किन्तु इन दिनों शिकारियों के डर से निश्चिन्त भाव से उन्हें छोड़कर नहीं जा सकती।

उस लड़की का सौन्दर्य बिल्कुल ही नये ढङ्ग का था—मानों विश्वकर्मा ने उसे अभी गढ़कर जान डाल दी है। उसकी अवस्था का निर्णय करना कठिन है। शरीर में जवानी के चिह्न प्रकट हो आये हैं, किन्तु उसका मुख ऐसा भोला है कि संसार के रङ्ग-ढङ्ग ने मानों उसे अभी स्पर्श ही नहीं किया। जवानी के आने की खबर मानों उसको अभी तक नहीं मिली।

दमभर के लिए कान्तिचन्द्र मानों बन्दूक की नली साफ़ करना भूल गये। मानों वे कोई स्वप्न देखने लगे। ऐसी जगह पर ऐसा चेहरा देखने की उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी। तथापि किसी राजा के अन्तःपुर की अपेक्षा उसी जगह वह चेहरा भला लगता था। सोने की फूलदानी की अपेक्षा पेड़ में ही फूल की अधिक शोभा होती है। उस दिन शरद् ऋतु की ओस की बूँदों से और सबरे की धूप से नदी-तट पर का विकसित कासवन बहुत ही सुन्दर देख पड़ रहा था। उसी के बीच वह भोला भाला सुन्दर मुख देखकर कान्तिचन्द्र मुग्ध हो गये।

इसी समय एकाएक वह लड़की डरकर, रुआसा मुँह बनाकर, जल्दी से दोनों बत्तखों को गोद में लेकर अव्यक्त आर्त्त शब्द करती हुई घाट से चल दी। कान्तिचन्द्र ने उसके कारण का पता लगाने के लिए बजरे के बाहर आकर देखा, उनका एक रसिक मुसाहब केवल कौतुक के लिए—बालिका को डराने के लिए—उन बत्तखों की ओर बन्दूक तान रहा है। कान्तिचन्द्र ने पीछे से बन्दूक छीनकर एकाएक उसके गाल में एक थप्पड़ लगा दिया। अकस्मात् रङ्ग में भङ्ग देखकर वह मुसाहब वहाँ से टल गया। कान्तिचन्द्र फिर बजरे के भीतर जाकर बन्दूक साफ़ करने लगे।

थोड़ी देर में कान्तिचन्द्र ने एक कबूतर को गोली मारी। गोली खाकर कबूतर कुछ दूर पर गिर पड़ा। शिकार का पता लगाने के लिए कान्तिचन्द्र उस दस-पाँच घर के छोटे से गाँव में गये। उन्हें अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। उन्होंने देखा, एक घर के द्वार पर पीपल के पेड़ के नीचे वही लड़की बैठी हुई है और उसकी गोद में वही घायल कबूतर है। वह लड़की फूल-फूलकर रोती हुई स्नेह से उस कबूतर के ऊपर हाथ फेर रही है और पास ही के एक पेड़ के थाले से आँचल भिगोकर प्यासे कबूतर के मुँह में पानी निचोड़ रही है। पालतू बिल्ली दोनों पैर फैलाये कबूतर की ओर लुब्ध दृष्टि से देख रही है। किन्तु वह बालिका उँगली दिखाकर उसके बड़े हुए आग्रह को बार-बार दमन कर देती है।

गाँव के भीतर दोपहर के सन्नाटे में यह करुण चित्र देखते ही कान्तिचन्द्र के हृदय में अङ्कित हो गया। पेड़ के पत्तों के भीतर से छाया

और धूप आकर उस बालिका के ऊपर पड़ रही थी। उसके पास ही एक परिपुष्ट गऊ भोजन के उपरान्त बैठी हुई पागुर कर रही थी और सींग-पूँछ हिला-हिलाकर मक्खियाँ हाँकती जाती थी। पास ही हवा से हिल रही बाँस की पत्तियों का शब्द सुन पड़ रहा था। सबरे नदी-तट पर जो बालिका वनलक्ष्मी की तरह देख पड़ी थी वह यहाँ दो-पहर के स्नेह-पूर्ण गृहलक्ष्मी के समान देख पड़ी।

कान्तिचन्द्र बन्दूक हाथ में लिये एकाएक उस बालिका के आगे आकर बहुत ही संकुचित हो पड़े। मानों चोरी के माल सहित चोर पकड़ लिया गया। उनकी इच्छा हुई कि किसी तरह वे प्रमाणित करें कि कबूतर मेरी गोली से घायल नहीं हुआ। किस तरह इस बात की चर्चा चलावें, कान्तिचन्द्र यही सोच रहे थे। इसी समय घर के भीतर से किसी ने पुकारा—सुधा ! बालिका जैसे चौंक उठी। फिर किसी ने पुकारा—सुधा ! तब वह बालिका जल्दी से कबूतर को लेकर घर के भीतर चली गई। कान्तिचन्द्र ने अपने मन में कहा—नाम तो बहुत ही ठीक है। सुधा !

कान्तिचन्द्र तब नाव पर आकर बन्दूक रखकर उसी घर के सदर दरवाज़े पर फिर उपस्थित हुए। देखा, एक सिर मुँड़ाये हुए शान्त-मूर्ति ब्राह्मण कबूतरे पर बैठे भक्तमाल पढ़ रहे हैं। कान्तिचन्द्र ने उन ब्राह्मण के भक्ति-मण्डित मुख के गम्भीर स्निग्ध शान्त भाव के साथ उस बालिका के दयार्द्र मुख के सादृश्य का अनुभव किया।

कान्तिचन्द्र ने ब्राह्मण को नमस्कार करके कहा—प्यास लगी है महाशय ! क्या लोटा भर जल मिल सकता है ? ब्राह्मण ने सादर उनको

बिठलाया और भीतर से कुछ बताशे और लोटे भर पानी लेकर अतिथि के सामने रख दिया ।

कान्तिचन्द्र के जल पी चुकने के बाद ब्राह्मण ने उनका परिचय पाने की इच्छा प्रकट की । कान्तिचन्द्र ने अपना परिचय देकर कहा—महाशय, अगर मैं आपका कुछ उपकार कर सकता तो अपने को कृतार्थ समझता ।

उन ब्राह्मण का नाम नवीनचन्द्र बनर्जी था । उन्होंने कहा—बेटा, तुम मेरा क्या उपकार करोगे ? एक सुधा नाम की मेरी लड़की है, उसे किसी अच्छे लड़के को सौंपना ही मेरे लिए एक कार्य रह गया है । पास के स्थानों में कहीं कोई अच्छा सुशील सुपात्र कुलीन लड़का नहीं देख पड़ता; दूर जाकर पता लगाने की सामर्थ्य नहीं । घर में भगवान् की मूर्ति है, उसे छोड़कर कहीं जाना नहीं हो सकता ।

कान्तिचन्द्र ने कहा—नाव पर आप मुझसे अगर मिल सकें तो मैं एक कुलीन अच्छा लड़का बतला सकता हूँ ।

इधर कान्तिचन्द्र के भेजे दूतों ने नवीनचन्द्र बनर्जी की कन्या सुधा के बारे में गाँव में जिससे पूछा उसी ने कन्या के स्वभाव की बड़ी बड़ाई की ।

दूसरे दिन नवीनचन्द्र जब नाव पर आये तब कान्तिचन्द्र ने उनको प्रणाम करके बिठलाया और बातों ही बातों में यह जताया कि वे उनकी कन्या से ब्याह करना चाहते हैं । ब्राह्मण इस अचिन्तित असम्भव सौभाग्य की बात सुनकर बहुत विस्मित हुए । उन्हें जान पड़ा, कान्तिचन्द्र को कुछ भ्रम हो गया है । उन्होंने फिर कहा—तुम मेरी कन्या के साथ ब्याह करोगे ?

कान्तिचन्द्र—अगर आपकी सम्मति हो तो मैं तैयार हूँ ।

नवीनचन्द्र ने फिर पूछा—सुधा के साथ ?

उत्तर मिला—हाँ ।

नवीनचन्द्र ने स्थिर भाव से प्रश्न किया—तुमने उसको अभी देखा सुना भी नहीं है—

कान्तिचन्द्र ने जैसे उसे सचमुच ही नहीं देखा, ऐसा ढङ्ग करके कहा—इसके लिए आप कुछ चिन्ता न करें ।

नवीन ने गद्गद होकर कहा—मेरी सुधा बहुत ही सुशील लड़की है, घर-गृहस्थी के काम करने में अद्वितीय है । तुम जैसे बिना देखे ही उसे ब्याहने के लिए तैयार हो वैसे ही मैं भी आशीर्वाद देता हूँ कि मेरी सुधा सदा तुम्हारे मन के माफ़िक रहकर तुमको सुखी करे ।

माघ के महीने में ब्याह होना पक्का हो गया ।

गाँव के रईस मजूमदार बाबू के पुराने घर में ब्याह का स्थान निर्दिष्ट हुआ । यथासमय पालकी पर चढ़कर रोशनी और बाजे-गाजे के साथ वर आकर उपस्थित हुआ ।

विवाह के समय एक बार, माँग में सेंदुर लगाने के अवसर पर, वर ने कन्या की ओर देखा । सिर झुकाये लजाशीला सुधा को कान्तिचन्द्र अच्छी तरह नहीं देख सके । आनन्द के मारे आँखों में चकाचौंध सी लग गई ।

कुल-नीति के अनुसार वर को घर के भीतर मुँह जुठालने के लिए जाना पड़ा । वहाँ एक स्त्री ने ज़बरदस्ती वर के द्वारा कन्या का धूँधट खोलवाया । धूँधट खोलते ही कान्तिचन्द्र मानों चौंक पड़े ।

यह तो वह लड़की नहीं है। एकाएक मानों उनके सिर पर वज्र गिर पड़ा। दम भर में मानों वहाँ की सब रोशनी बुझ गई और उस अन्धकार की बाढ़ ने मानों नव-वधू के मुख को भी अन्धकारमय बना दिया।

कान्तिचन्द्र ने अपने मन में दुबारा ब्याह न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। भाग्य ने उस प्रतिज्ञा को इस तरह की दिल्लगी करके चुटकी बजाते-बजाते नष्ट कर दिया। कितने ही अच्छे-अच्छे ब्याह आये, और उनको कान्तिचन्द्र ने नामञ्जूर कर दिया। ऊँचे घराने के सम्बन्ध का खयाल, धन का प्रलोभन और रूप का मोह कान्तिचन्द्र को नहीं डिगा सका; किन्तु अन्त को एक अपरिचित गाँव में एक अज्ञात दरिद्र के घर ऐसी विडम्बना सहनी पड़ी। लोगों को मुँह किस तरह दिखलावेंगे ?

पहले ससुर के ऊपर क्रोध हुआ। ठग ने एक लड़की दिखाकर दूसरी लड़की मुझे ब्याह दी। किन्तु फिर उन्होंने सोचा कि नवीनचन्द्र ने तो लड़की दिखाई नहीं। वह तो ब्याह के पहले लड़की दिखाने के लिए राज़ी थे, किन्तु कान्तिचन्द्र ने खुद ही नाहीं कर दी। अपनी बुद्धि के दोष को किसी के आगे प्रकट न करना ही कान्तिचन्द्र ने अच्छा समझा।

वे दवा की तरह उस बात को पी गये, किन्तु उनके मुख का भाव बिगड़ गया। सुसराल की औरतों का मसखरापन उन्हें बुरा मालूम पड़ने लगा। अपने और सर्वसाधारण के ऊपर उन्हें बड़ा क्रोध हो आया।

इसी समय कान्तिचन्द्र के पास बैठी हुई नव-वधू एकाएक अव्यक्त भय का शब्द करके चौंक पड़ी। सहसा उसके पास से एक खरगोश का बच्चा दौड़ता हुआ निकल गया। उसी दम उस दिन की वही लड़की खरगोश के बच्चे के पीछे दौड़ती हुई आई। खरगोश के बच्चे को पकड़कर उसके गाल पर गाल रखकर उसे वह दुलराने लगी। “वह पगली आ गई” यह कहकर सब औरतें इशारे से वहाँ से, चले जाने के लिए, उससे कहने लगीं। किन्तु उधर कुछ ध्यान न देकर वर और कन्या के सामने बैठकर बच्चों की तरह कौतूहल के साथ, क्या हो रहा है, यह वह देखने लगी। एक स्त्री उसे ज़बरदस्ती पकड़कर वहाँ से हटाने की चेष्टा करने लगी। कान्तिचन्द्र ने कहा—क्यों, उसे बैठी रहने दो। इसके बाद उस लड़की से कान्तिचन्द्र ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

वह लड़की कुछ उत्तर न देकर वर की ओर ताकने लगी। जितनी औरतें वहाँ बैठी थीं, सब हँसने लगीं।

कान्तिचन्द्र ने फिर पूछा—तुम्हारी बत्तखें अच्छी हैं ?

कुछ उत्तर न देकर, बिना किसी सङ्कोच के, उसी तरह वह लड़की कान्तिचन्द्र के मुँह की ओर ताकती रही।

कान्तिचन्द्र ने साहस करके फिर पूछा—तुम्हारा वह कबूतर अच्छा हो गया ? फिर भी कुछ उत्तर न मिला। सब औरतें इस तरह हँसने लगीं जैसे वर को बड़ा भारी धोखा हुआ।

अन्त को पूछने पर कान्तिचन्द्र को मालूम हुआ कि वह लड़की गूँगी और बहरी है। गाँव के सब पशु-पक्षी ही उसके साथी हैं। उस

दिन सुधा की पुकार सुनकर जो वह घर के भीतर गई थी सो उसका केवल अनुमान था ।

यह सुनकर कान्तिचन्द्र अपने मन में चौंक पड़े । जिसको न पाकर वे पृथ्वी को सुख से शून्य समझने लगे थे, भाग्यवश उसी के हाथ से छुटकारा पाकर उन्होंने अपने को धन्य समझा । कान्तिचन्द्र ने अपने मन में कहा—अगर मैं इसी लड़की के बाप के पास पहुँचता और वह मेरी प्रार्थना के अनुसार कन्या को किसी तरह मेरे गले मढ़कर छुटकारा पाने की चेष्टा करता तो !

जब तक अपने हाथ से निकल गई उस लड़की का मोह उनके मन में हलचल डाले हुए था तब तक वे अपनी स्त्री के सम्बन्ध में बिलकुल अन्धे हो रहे थे । पास ही और कोई सान्त्वना का कारण है या नहीं, यह देखने की प्रवृत्ति भी उन्हें नहीं थी । किन्तु ज्योंही उन्होंने उस लड़की के गूँगे और बहरे होने की बात सुनी त्योंही उनकी दृष्टि के सामने मानों जगत् के ऊपर से काला पर्दा हट गया । कान्तिचन्द्र ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद देकर एक बार सुयोग पाकर अपनी स्त्री की ओर देखा । उस समय उन्हें अपनी नवविवाहिता स्त्री लक्ष्मी से बढ़कर सुन्दरी जान पड़ी । इतनी देर के बाद उन्होंने समझा कि नवीनचन्द्र का आशीर्वाद व्यर्थ न होगा ।

समस्या-पूरण

(१)

देवपुर के ज़मींदार रामगोपाल अपने बड़े लड़के को ज़मींदारी और घर-गृहस्थी सौंपकर काशीवास करने चले गये। देश के सब अनाथ दरिद्र लोग उनके लिए हाहाकार करके रोने लगे। सब यही कहने लगे कि ऐसी उदारता और धर्मनिष्ठा कलियुग में नहीं देख पड़ती।

उनके पुत्र कृष्णगोपाल आजकल के एक सुशिक्षित बी० ए० हैं। दाढ़ी है, चश्मा लगाते हैं, किसी के पास अधिक उठते-बैठते नहीं। अत्यन्त सच्चरित हैं, यहाँ तक कि तमाखू भी नहीं खाते। अत्यन्त भलेमानुस का सा चेहरा है। लेकिन मिज़ाज कड़ा है।

उनकी प्रजा को शीघ्र ही इस बात का अनुभव हो गया। बूढ़े मालिक से वश चलता था, किन्तु यह मालिक एक पैसा भी छोड़नेवाला नहीं। निर्दिष्ट समय में भी एक दिन की रियायत नहीं होती।

कृष्णगोपाल के हाथ में अधिकार आते ही उन्होंने देखा कि बहुत से ब्राह्मणों पास बिना लगान की ज़मीन है और बहुत से लोगों के पास कम लगान पर भी ज़मीन है। रामगोपाल से अगर कोई कुछ प्रार्थना करता था तो वे उसे पूर्ण किये बिना नहीं रहते थे। यह उनमें एक कमज़ोरी थी।

कृष्णगोपाल ने कहा—यह कभी नहीं हो सकता। मैं आधी ज़मीन बिना लगान के नहीं दे सकता। उन्हें निम्नलिखित दो युक्तियाँ सूझीं।

एक यह कि जो निकम्मे लोग घर में बैठे-बैठे इस ज़मीन का मुनाफ़ा खा-खाकर मोटे हो रहे हैं वे अधिकांश ही अपदार्थ और दया के अयोग्य हैं। इस प्रकार का दान देना मानों आलस्य को प्रश्रय देना है।

दूसरे यह कि उनके बाप-दादे के समय की अपेक्षा इस समय जीविका बहुत ही दुर्लभ हो गई है, खर्च भी बहुत बढ़ गया है। इस समय अपनी मान-मर्यादा बनाये रखकर चलने में चौगुना खर्च करना पड़ता है। अतएव उनके पिता जिस प्रकार निश्चिन्त होकर दोनों हाथों से सम्पत्ति लुटा गये हैं वैसा करने से काम नहीं चल सकता। बल्कि उस बिखरी हुई सम्पत्ति को घर में बटोर लाना ही कर्त्तव्य है।

कर्त्तव्य-बुद्धि ने जो कहा वही करना उन्होंने शुरू कर दिया। वे एक सिद्धान्त पकड़कर चलने लगे।

घर से जो बाहर चला गया था वह फिर धीरे-धीरे घर में आने लगा। उन्होंने पिता के बहुत थोड़े से दान को बहाल रखवा। और जो रखवा भी उसके लिए ऐसा ढङ्ग कर दिया जिसमें वह चिरस्थायी दान न समझा जाय।

रामगोपाल को काशी में ही प्रजा के दुःख का हाल सुन पड़ा। यहाँ तक कि कोई-कोई असामी उनके पास जाकर अपने दुःख की गाथा सुना आया। रामगोपाल ने कृष्णगोपाल को चिट्ठी लिखी कि यह काम अच्छा नहीं होता।

कृष्णगोपाल ने उत्तर में लिखा कि पहले जिस तरह दान किया जाता था उस तरह आमदनी की सूरतें भी बहुत सी थीं। तब ज़मींदार प्रजा को देता था और प्रजा ज़मींदार को देती थी। इस समय नये आईन

के अनुसार तरह-तरह से ज़मींदारों की आमदनी बन्द हो गई है, केवल लगान मिलता है। और केवल लगान वसूल करने के सिवा ज़मींदार के अन्यान्य गौरव-जनक अधिकार भी उठ गये हैं। अतएव आजकल यदि मैं अपनी उचित आमदनी पर कड़ी दृष्टि न रखूँ तो खाऊँ क्या ! इस समय प्रजा भी मुझे कुछ अधिक न देगी और मैं भी उसे कुछ अधिक न दूँगा। दान और ख़ैरात करने से कुछ दिन में ही कङ्काल हो जाना पड़ेगा—इज्जत और कुल-गौरव की रक्षा करना कठिन हो जायगा।

रामगोपाल समय के इतने अधिक परिवर्तन से चिन्तित हो उठे। उन्होंने सोचा, आजकल के लड़के आजकल के अनुसार ही काम करते हैं—मेरे समय के नियम अब काम नहीं दे सकते। मैं दूर बैठे रहकर इस काम में हस्तक्षेप करूँगा तो लड़के कहेंगे कि तुम अपनी सम्पत्ति लो—हमसे इसकी रक्षा न हो सकेगी। काम क्या है भाई, मैं जीवन के अन्तिम दिन भगवद्भजन में ही बिताऊँगा।

(२)

इसी तरह काम चलने लगा। अनेक मुक़द्दमे चलाकर, दङ्गा-हङ्गामा करके, कृष्णगोपाल ने सब ढङ्ग अपने मन के माफ़िक़ कर लिया।

बहुत सी प्रजा ने डरकर सब प्रकार से कृष्णगोपाल के अनुगत होना स्वीकार कर लिया। केवल अहमदी का लड़का रमज़ानी किसी तरह काबू में नहीं आया।

कृष्णगोपाल का आक्रोश भी उसी पर सबसे अधिक था । ब्राह्मण को माफ़ी देने का तो कुछ अर्थ भी समझ में आता है, लेकिन मुसलमान के लड़के को माफ़ी देने का क्या मतलब ? एक मामूली मुसलमान विधवा का लड़का गाँव के खैराती स्कूल में थोड़ा सा लिखना-पढ़ना सीखकर ऐसा घमण्डी हो गया है कि किसी को मानता ही नहीं ।

कृष्णगोपाल को पुराने कर्मचारियों से मालूम हुआ कि रमज़ानी और उसकी मा पर बहुत दिनों से रामगोपाल का अनुग्रह चला आता है । इस अनुग्रह का कोई विशेष कारण वे बतला नहीं सके । शायद अनाथ विधवा का दुःख देखकर ही रामगोपाल को उस पर दया आ गई थी ।

किन्तु कृष्णगोपाल को पिता का यह अनुग्रह सबसे बढ़कर अयोग्य जान पड़ा । खासकर रमज़ानी के यहाँ की पहले की गरीबी की हालत कृष्णगोपाल ने देखी नहीं । इस समय हाथ-पैर फैलने की अवस्था में रमज़ानी की बढ़ा-बढ़ी और दम्भ देखकर कृष्णगोपाल को जान पड़ता था कि मानों रमज़ानी की मा अहमदी ने दया-दुर्बल रामगोपाल को धोखा देकर उनकी सम्पत्ति का एक अंश ठग लिया है ।

रमज़ानी भी उद्धत प्रकृति का युवक था । उसने कहा—जान चली जायगी तो भी मैं माफ़ी की एक तिल भी ज़मीन न छोड़ूँगा । दोनों ओर से मुक़दमेवाज़ी शुरू हो गई ।

रमज़ानी की विधवा माता ने लड़के को बार-बार समझाकर कहा कि ज़मींदार के साथ झगड़ा करने की कोई ज़रूरत नहीं है अब तक जिनकी कृपा पर निर्भर करके जीवन बिताया है । उन्हीं की कृपा प

निर्भर रहना इस समय भी कर्तव्य है। ज़मींदार के कहने के अनुसार कुछ माफ़ी छोड़ दो।

रमज़ानी ने कहा—अम्मा, तुम इन मामलों में कुछ भी नहीं जानती।

मुक़द्दमेवाज़ी में रमज़ानी की हार होने लगी; किन्तु जितना ही वह हारने लगा उतनी ही उसकी ज़िद बढ़ने लगी। उसने अपनी माफ़ी की रक्षा करने में सर्वस्व का दाँव लगा दिया।

एक दिन तीसरे पहर अहमदी उपहार-स्वरूप अपने खेत की कुछ तरकारी लेकर, लड़के से चुराकर, कृष्णगोपाल से मिलने गई। बुढ़िया मानों अपनी सकरुण मातृदृष्टि के द्वारा स्नेहपूर्वक कृष्णगोपाल के सारे शरीर पर हाथ फेरकर बोली—भैया, अल्ला तुम्हारा भला करें। बेटा, रमज़ानी को तुम बिगाड़ना नहीं। मैं उसे तुमको सौंपती हूँ। उसे तुम अपना छोटा भाई समझकर उसके खाने-पीने का ज़रिया वह ज़मीन दे दो। तुम्हारे बेशुमार दौलत है। जितनी तुम्हारी ज़मीन उसके पास है उतनी ज़मीन से तुम्हारा कुछ बन-बिगड़ नहीं सकता।

अधिक अवस्था की स्वाभाविक प्रगल्भता के कारण बुढ़िया नाता जोड़ने आई है, यह देखकर कृष्णगोपाल बहुत ही खीझ उठे। उन्होंने कहा—तुम औरत हो, इन बातों को नहीं समझ सकती। अगर कुछ कहना हो तो अपने लड़के को भेज देना।

अहमदी ने अपने लड़के और पराये लड़के दोनों से सुना कि वह इस मामले में कुछ नहीं समझ सकती! अल्ला का नाम लेकर आँसू पोंछते-पोंछते वह घर लौट गई।

(३)

मुक़द्दमा फ़ौजदारी से दीवानी, दीवानी से डिस्ट्रिक्ट कोर्ट और वहाँ से हाईकोर्ट पहुँचा । इसी में डेढ़ वर्ष बीत गया ! रमज़ानी जब ऋण में चोटी तक डूब गया तब अपील में उसकी आंशिक जय हुई ।

किन्तु स्वर्ग से गिरा तो खज़ूर में अटक़ा । महाजन ने मौज़ा देखकर डिक्री जारी करा दी । रमज़ानी का सर्वस्व नीलाम होने का दिन निश्चित हो गया ।

उस दिन सोमवार, बाज़ार का दिन था । एक छोटी सी नदी के किनारे बाज़ार लगती थी । बरसात में नदी भरी हुई थी । बहुत से सौदे विक रहे थे । असाढ़ का महीना था । कटहल ख़ूब विक रहे थे । बादल घिरे हुए थे । शीघ्र ही पानी बरसनेवाला जान पड़ता था ।

रमज़ानी भी बाज़ार में सौदा ख़रीदने आया था; लेकिन उसके पास एक पैसा भी न था । आजकल उसे उधार भी नहीं मिलता । वह एक बड़ा चाक़ू और थाली लेकर बाज़ार आया था । इन्हीं दोनों चीज़ों के गिरों रखकर आज वह सौदा लेनेवाला था ।

तीसरे पहर कृष्णगोपाल भी हवा खाने निकले थे । दो-तीन सिपाही भी लम्बी लाठी लिये उनके साथ थे । बाज़ार का शोर-गुल सुनकर कृष्णगोपाल उधर ही चले । बाज़ार में घुसकर एक आदमी से कृष्णगोपाल बातें करने लगे । इसी समय चाक़ू तानकर रमज़ानी शेर की तरह गरजता हुआ उसी ओर भपटा । लोगों ने राह में ही पकड़कर उसका चाक़ू छीन लिया । तुरन्त वस पुलिस में दे दिया गया और फिर उसी तरह बाज़ार की ख़रीद-फ़रोख्त का काम होने लगा ।

इस घटना से कृष्णगोपाल कुछ प्रसन्न नहीं हुए। हम जिसका शिकार करना चाहते हैं वह अगर हम पर वार करने आवे तो उसकी ऐसी बदज़ाती और बे-अदबी नहीं सही जा सकती। जो हो, जैसा बदमाश था वैसी ही सज़ा उसे मिलेगी।

इस घटना का हाल सुनकर कृष्णगोपाल के घर में औरतों के रंगटे खड़े हो आये। सबने कहा—बड़ा पाजी है। उसे उचित दण्ड मिलने की सम्भावना से सबको सान्त्वना प्राप्त हुई।

इधर उसी रात को विधवा अहमदी को पुत्रहीन, अन्नहीन घर मृत्यु से भी अधिक भयानक जान पड़ने लगा। इस बात को सब लोग भूल गये। सबने भोजन किया। खा-पीकर सब सो गये। केवल बुढ़िया अहमदी के लिए पृथ्वी पर की सब घटनाओं की अपेक्षा यही घटना सबसे मुख्य हो उठी। तथापि इस घटना के विरुद्ध युद्ध करने के लिए पृथ्वी भर पर और कोई नहीं है। केवल दीप-हीन भोपड़ी में वही बुढ़िया अल्ला-अल्ला कर रही थी।

(४)

इसी तरह तीन दिन बीत गये। कल डिपुटी मजिस्ट्रेट के इजलास में रमज़ानी का विचार होगा। कृष्णगोपाल को गवाही देने के लिए जाना होगा। अब से पहले ज़मींदार कभी गवाही के कटघरे में नहीं खड़े हुए। किन्तु इस मामले में गवाही देने जाने में कृष्णगोपाल को कोई आपत्ति नहीं है।

दूसरे दिन ठीक समय पर घड़ी लगाकर, पगड़ी पहनकर, पालकी पर चढ़कर कृष्णगोपाल कचहरी में गये। डिपुटी मजिस्ट्रेट ने इज्जत

के साथ उनको अपने बराबर कुर्सी दी। इजलास में आज बड़ी भीड़ थी। अदालत में इतना जमाव आज तक कभी नहीं हुआ।

मुकदमा पेश होने में कुछ भी देर न थी, इसी समय कृष्णगोपाल के एक सिपाही ने आकर उनके कान में कुछ कहा। वे उसी समय “एक ज़रूरत है” कहकर अदालत से उठकर बाहर आये।

बाहर आकर देखा, कुछ दूर पर बर्गद के पेड़ के नीचे उनके काशी-वासी वृद्ध पिता खड़े हुए हैं। नंगे पैर, रामनामी दुपट्टा ओढ़े और हाथ में माला लिये जप रहे हैं। उनके दुर्बल शरीर में एक प्रकार की स्निग्ध ज्योति भलक रही थी। मस्तक से एक प्रकार की प्रशान्त करुणा जगत् के ऊपर जैसे बरस रही थी।

चपकन वगैरह पहने कृष्णगोपाल ने बड़े कष्ट से अपने पिता को प्रणाम किया। सिर की पगड़ी गिरते-गिरते बची, जेब से घड़ी बाहर निकल पड़ी। उन्हें ठीक करके कृष्णगोपाल ने पिता से, पास ही एक वकील के तख्त पर चलकर, बैठने के लिए अनुरोध किया।

रामगोपाल—नहीं, मुझे जो कुछ कहना है, यही कहूँगा।

कृष्णगोपाल के सिपाही कौतूहली लोगों की भीड़ को दूर हटाने की चेष्टा करने लगे।

रामगोपाल ने कहा—रमज़ानी को छुड़ाने की चेष्टा करनी होगी, और उसकी सम्पत्ति जो तुमने ले ली है वह लौटा देनी होगी।

कृष्णगोपाल ने विस्मित होकर पूछा—इसी लिए आप काशी से इतनी दूर आये हैं? रमज़ानी पर आपका इतना अनुग्रह क्यों है?

रामगोपाल ने कहा—यह सुनकर तुम क्या करोगे?

कृष्णगोपाल ने नहीं माना और कहा—अयोग्यता का विचार करके कितने ही लोगों के दानद्रव्य और सम्पत्ति को मैंने ले लिया है। उनमें बहुत से ब्राह्मण भी थे। लेकिन आपने उन मामलों में कुछ भी दस्तन्दाजी नहीं की। और इस मुसलमान के लिए आपने इतनी चेष्टा की ! मुझसे चलाकर अगर मैं रमज़ानी को छोड़ दूँगा और सब सम्पत्ति वापस कर दूँगा तो लोग क्या कहेंगे !

रामगोपाल कुछ देर तक चुप रहे। अन्त को जल्दी-जल्दी काँपती हुई उँगलियों से माला फेरते हुए कुछ काँप रहे स्वर में उन्होंने कहा—अगर लोगों के आगे सब खुलासा करके कहना ज़रूरी है तो उनसे कहना—रमज़ानी तुम्हारा भाई, मेरा पुत्र है।

कृष्णगोपाल ने चौँककर कहा—मुसलमानी के पेट से ?

रामगोपाल ने कहा—हाँ मैया !

कृष्णगोपाल ने बहुत देर तक चुपचाप खड़े रहकर कहा—यह सब पीछे होगा, पहले आप घर चलिए।

रामगोपाल ने कहा—नहीं, मैं तो अब घर में जाऊँगा नहीं। मैं यहीं से लौट जाता हूँ। अब तुमको जो उचित जान पड़े सो करना।

यह कहकर आशीर्वाद देकर वे चल दिये। उनकी आँखों में आँसू भरे हुए थे और शरीर काँप रहा था।

कृष्णगोपाल कुछ निश्चित न कर सके कि पिता से क्या कहना चाहिए। किन्तु यह बात अवश्य उनके मन में आई कि अगले ज़माने की धर्मनिष्ठा ऐसी ही है ! शिक्षा और चरित्र में उन्होंने अपने को पिता

की अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ समझा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि एक निश्चित सिद्धान्त न रहने का ही यह कुफल है।

अदालत की ओर जब वे आये तब उन्होंने देखा, रमज़ानी दो सिपाहियों के बीच में हथकड़ी पहने बैठा है। उसका शरीर दुर्बल हो रहा है। ओंठ सूख रहे हैं। आँखों में एक प्रकार का तीव्र तेज झलक रहा है। एक मैला कपड़ा पहने हुए है। वह कृष्णगोपाल का भाई है !

डिपुटी मजिस्ट्रेट के साथ कृष्णगोपाल की दोस्ती थी। मुक़द्दमा गोलमाल करके एक तरह से खारिज हो गया। कुछ ही दिनों में रमज़ानी की पपले की सी अवस्था हो गई। किन्तु इसका कारण उसे भी नहीं मालूम हुआ कि यह छुटकारा क्यों हुआ और कृष्णगोपाल ने सब माफ़ी क्यों फिर दे डाली। अन्य लोगों को भी इस घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ।

मुक़द्दमे के समय रामगोपाल के आने की बात दम भर में फैल गई थी। सब लोग इस बात को लेकर कानाफूसी करने लगे।

सूक्ष्म बुद्धिवाले वकीलों ने अनुमान से सब बात जान ली। हरेकृष्ण वकील को रामगोपाल ने अपने स्वर्च से लिखा-पढ़ाकर इस दर्जे को पहुँचाया था कि वह वकील साहब कहलाते थे। वह बराबर सन्देह करता था। किन्तु इतने दिनों के बाद उसने पूरी तौर से समझ लिया कि अच्छी तरह अनुसन्धान करने से सभी साधुओं की पोल खोली जा सकती है। कोई चाहे जितनी माला फेरे, पृथ्वी पर सब मेरे ही

ऐसे हैं। संसार में साधु और असाधु में अन्तर इतना ही है कि साधु लोग कपटी होते हैं और असाधु लोग निष्कपट होते हैं। अर्थात् साधु लोग चुराकर कुकर्म करते हैं और असाधु लोग खुलासा। जो हो, रामगोपाल के दया-धर्म-महत्त्व आदि को कपट ठहराकर हरेकृष्ण ने इतने दिनों की समस्या हल कर ली। और न-जानें किस युक्ति के अनुसार उससे कृतज्ञता का बोझ भी मानों उसके सिर पर से उतर गया।

प्रायश्चित्त

(१)

स्वर्ग और मनुष्यलोक के बीच में एक अनिर्देश्य अराजक स्थान है, जहाँ राजा त्रिशंकु लटक रहे हैं और जहाँ आकाशकुसुमों के ढेर पैदा होते हैं। उस वायुदुर्गवेष्टित महादेश का नाम है “होता तो हो सकता”। जो लोग महत् कार्य करके अमरता प्राप्त कर गये हैं वे धन्य हो गये हैं। जो लोग साधारण क्षमता लेकर साधारण मनुष्यों में साधारण भाव से संसार के नित्य प्रति के कर्त्तव्यों के साधन में सहायता करते हैं वे भी धन्य हैं। किन्तु जो लोग भाग्य के भ्रम से इन दोनों अवस्थाओं के बीच में पड़े हुए हैं, उनके लिए और कोई उपाय नहीं है। वे कोई एक बात होने से कुछ हो सकते थे, किन्तु उसी कारण से उन लोगों के लिए कुछ होना सबकी अपेक्षा असम्भव है।

हमारे अनाथबन्धु बाबू वैसेही बीच में लटके हुए विधाता से विडम्बना को प्राप्त युवक हैं। सबका यही विश्वास है कि वे इच्छा करते तो सभी बातों में कृतकार्य हो सकते। किन्तु किसी समय उन्होंने इच्छा भी नहीं की और किसी काम में कृतकार्य भी नहीं हो सके। इसी कारण उनके प्रति सबका विश्वास अटल बना रह गया। सबने कहा—वे परीक्षा में औवल नम्बर पावेंगे, किन्तु उन्होंने परीक्षा ही नहीं दी। सबका विश्वास है कि वे नौकरी करते तो हर एक डिपार्ट में अनायास ही अत्यन्त

उच्च स्थान प्राप्त कर सकते; किन्तु उन्होंने कोई नौकरी ही नहीं की। साधारण लोगों के प्रति उनको विशेष घृणा थी; क्योंकि वे अत्यन्त सामान्य हैं। असाधारण लोगों के प्रति उन्हें कुछ भी श्रद्धा न थी; क्योंकि अगर वे चाहते तो उनकी भी अपेक्षा असाधारण हो सकते थे।

अनाथबन्धु की ख्याति-प्रतिपत्ति-सुख-सम्पत्ति-सौभाग्य सब देश-काल से परे असम्भवता के भाण्डार में निहित था। वास्तव में विधाता ने उनको एक धनी ससुर और एक सुशीला स्त्री दी थी। स्त्री का नाम था विन्ध्यवासिनी।

स्त्री का नाम अनाथबन्धु को पसन्द न था और स्त्री को भी वे रूप और गुण में अपने अयोग्य समझते थे। किन्तु स्त्री के मन में स्वामी के सौभाग्य-गर्व की सीमा नहीं थी। सब स्त्रियों के सब स्वामियों की अपेक्षा सब बातों में विन्ध्यवासिनी के स्वामी श्रेष्ठ हैं, इस बारे में विन्ध्यवासिनी को कुछ सन्देह न था। उसके स्वामी को भी कुछ सन्देह न था। साथ ही सर्व साधारण का विश्वास भी इन स्वामी और स्त्री की धारणा के अनुकूल था।

विन्ध्यवासिनी सदा इसके लिए शङ्कित रहती थी कि यह स्वामी के गौरव का गर्व कहीं रस्ती भर भी खण्डित न हो। वह अगर अपने हृदय के आकाश-भेदी अटल भक्ति-पर्वत के उच्चतम शिखर के ऊपर स्वामी को चढ़ाकर इस मूढ़ मर्त्यलोक के कटाक्षपात से दूर रख सकती तो निश्चिन्त होकर पति की पूजा में जीवन को लगा देती। किन्तु जड़-जगत् में केवल भक्ति के द्वारा भक्ति-पात्र को ऊपर उठाकर रक्खा नहीं जा सकता और अनाथबन्धु को भी पुरुष का आदर्श न माननेवाले लोगों की संसार

में कमी न थी । इसलिए अक्सर विन्ध्यवासिनी को बहुत दुःख भी होता था ।

अनाथबन्धु जब कालेज में पढ़ते थे तब सुसराल में ही रहते थे । जब परीक्षा का समय आया तब उन्होंने परीक्षा नहीं दी और दूसरे साल कालेज का पढ़ना भी छोड़ दिया ।

इस घटना से विन्ध्यवासिनी सर्वसाधारण के आगे अत्यन्त कुण्ठित हो पड़ी । एक दिन रात को धीरे से उसने स्वामी से कहा—परीक्षा दे डालते तो अच्छा होता ।

अनाथबन्धु ने अवज्ञा के भाव से हँसकर कहा—परीक्षा देने से ही सारी योग्यता आ जाती होगी ! हमारे केदारनाथ भी तो परीक्षा पास कर चुके हैं !

विन्ध्यवासिनी को सान्त्वना प्राप्त हुई । देश के अनेक गोगर्दभ जिस परीक्षा को पास कर लेते हैं वह परीक्षा देने से अनाथबन्धु का गौरव क्या और बढ़ सकता है !

परोसिन कमला अपनी लड़कपन की सखी बिन्दो (विन्ध्यवासिनी) को आनन्द के साथ एक खबर देने आई कि उसका भाई रमेश इस बार परीक्षा में पास हो गया है और उसे स्कालरशिप भी मिला है । सुनकर अकारण ही विन्ध्यवासिनी को यह जान पड़ा कि कमला का यह आनन्द विशुद्ध आनन्द नहीं है—इसके भीतर उसके स्वामी के प्रति एक प्रकार का गूढ़ व्यंग्य भी है । इसी कारण सखी के आनन्द में उल्लास न प्रकट करके बल्कि ज़बर्दस्ती गले पड़कर कुछ रूखे स्वर में उसने सुना दिया कि एफ़० ए० की परीक्षा कोई परीक्षा ही नहीं । यहाँ तक कि विलायत के

किसी कालेज में बी० ए० के नीचे परीक्षा ही नहीं है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि इस खबर और युक्ति को उसने स्वामी के मुख से ही सुना था।

सुसंवाद सुनाने आकर कमला सहसा अपनी परम प्यारी सखी की ओर से ऐसा आघात पाकर पहले कुछ विस्मित हुई। किन्तु वह भी तो स्त्री ही थी। इसी कारण दम भर में उसने विन्ध्यवासिनी के मन का भाव समझ लिया। भाई के अपमान से उसी दम उसकी ज़बान में भी तीव्र विष सञ्चारित हो गया। उसने कहा—बहन, मैं तो विलायत गई नहीं, और विलायत हो आनेवाले स्वामी से मेरा ब्याह भी नहीं हुआ। ये सब बातें मैं कैसे जान सकती हूँ। मैं मूर्ख औरत ठहरी। साधारणतः मेरी समझ में यही आता है कि बङ्गाली के लड़के को कालेज में एफ़० ए० की परीक्षा देनी होती है और वह भी सब नहीं दे सकते।—अत्यन्त निरीह और बन्धुता के भाव से ये बातें कहकर कमला चली गई। कलह करने की प्रकृति न होने के कारण विन्ध्यवासिनी सुनकर चुप हो रही और कमरे के भीतर जाकर चुपचाप रोने लगी।

थोड़े ही समय के बाद और एक घटना हुई। एक दूर रहनेवाला धनी परिवार कुछ दिनों के लिए कलकत्ते में आकर विन्ध्यवासिनी के पिता के यहाँ ठहरा। इस उपलक्ष में विन्ध्यवासिनी के पिता राज-कुमार बाबू के यहाँ बड़ी धूम पड़ गई। अनाथबन्धु बाहर के जिस बड़े बैठकखाने पर दखल जमाये हुए थे उसे अभ्यागतों के लिए खाली कर दूसरे कमरे में कुछ दिनों के लिए रहने को उनसे अनुरोध किया गया।

इस घटना से अनाथबन्धु कुढ़ गये । पहले स्त्री के पास जाकर उसके पिता की निन्दा करके, उसे रुलाकर, उन्होंने ससुर से बदला चुकाया । उसके बाद भोजन न करने आदि अन्यान्य उपायों से उन्होंने अपने मन का भाव प्रकट करने की चेष्टा की । यह देखकर विन्ध्यवासिनी बहुत ही लज्जित हुई । उसके मन में जो सहज आत्ममर्यादा का बोध था उसी से उसने यह समझा कि ऐसी अवस्था में सबके आगे अपने कुढ़ने का भाव प्रकट करने से बढ़कर लज्जा और अपने अपमान की बात और नहीं है । हाथ जोड़कर, पैरों पड़कर, रो-धोकर, बड़े कष्ट से उसने अपने स्वामी को शान्त किया ।

विन्ध्यवासिनी विवेक से खाली न थी । इसी कारण इसके लिए उसने अपने पिता-माता को दोषी नहीं ठहराया । उसने सोचा, यह घटना सहज और स्वाभाविक है । किन्तु यह बात भी उसके मन में आई कि उसके स्वामी सुसराल में रहने के कारण आदर को अपने हाथों गँवा रहे हैं ।

उस दिन से नित्य वह स्वामी से कहने लगी कि तुम अपने घर मुझे ले चलो, अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी ।

अनाथबन्धु के मन में अहङ्कार तो यथेष्ट था, किन्तु अपनी प्रतिष्ठा का खयाल बिलकुल न था । अपने घर की गरीबी में लौट जाने के लिए किसी तरह वे राज़ी नहीं हुए । तब विन्ध्यवासिनी ने कुछ दृढ़ता प्रकट करके कहा—अगर तुम न ले चलोगे तो मैं अकेली ही जाऊँगी ।

अनाथबन्धु ने मन ही मन बहुत खीझकर अपनी स्त्री को कलकत्ते के बाहर छोटे गाँव में अपने कच्चे और टूटे घर में ले जाने का उद्योग

किया। यात्रा के समय राजकुमार बाबू और स्त्री ने लड़की से और कुछ दिन मायके में रहने के लिए अनुरोध किया। कन्या चुपचाप सिर झुकाये गम्भीर भाव से बैठी रही और इस प्रकार उसने जता दिया कि नहीं, यह नहीं हो सकता।

सहसा उसकी यह दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर पिता-माता को यह सन्देह हुआ कि बिना जाने शायद किसी बात से उसे चोट पहुँचाई गई है। राजकुमार बाबू ने व्यथित भाव से उससे पूछा—बेटी, क्या हमारे किसी बर्ताव से तुम्हारे हृदय को चोट पहुँची है ?

विन्ध्यवासिनी ने अपने पिता की ओर करुण दृष्टि से देखकर कहा—कभी नहीं। मैं यहाँ बड़े सुख से रही हूँ। यह कहकर विन्ध्यवासिनी रोने लगी। किन्तु उसका इरादा वैसा ही बना रहा।

माता-पिता ने एक लम्बी साँस लेकर अपने मन में कहा—चाहे जितने स्नेह और आदर से पालो, किन्तु ब्याह के बाद लड़की पराई हो जाती है।

अन्त को आँखों में आँसू भरे हुए विन्ध्यवासिनी सबसे बिदा होकर, पिता के घर और साथियों को छोड़कर, पालकी पर सवार हुई।

(२)

कलकत्ते के अमीर के घर और देहात के गरीब के घर में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। किन्तु विन्ध्यवासिनी ने घड़ी भर के लिए भाव अथवा आचरण से असन्तोष नहीं प्रकट किया। सदा खुश रहकर गृहस्थी के कामों में सास की सहायता करने लगी। समधियाने की

गरीबी का हाल जानकर राजकुमार बाबू ने कन्या के साथ एक दासी भेज दी थी। विन्ध्यवासिनी ने स्वामी के घर पहुँचते ही उसे बिदा कर दिया। यह आशङ्का भी उसे असह्य जान पड़ी कि बड़े घर की दासी उसकी सुसराल की गरीबी देखकर हर घड़ी मन ही मन नाक-भौं सिकोड़ा करेगी।

सास स्नेह के मारे विन्ध्यवासिनी को मेहनत के काम से रोकने की चेष्टा करती थी। किन्तु विन्ध्यवासिनी आलस्यहीन अश्रान्त भाव से प्रसन्नमुख रहकर सब काम-काज करती थी। इस प्रकार उसने सास के हृदय पर अधिकार जमा लिया और गाँव की औरतें भी उसके इस गुण को देखकर मुग्ध हो गईं।

किन्तु इसका फल सम्पूर्ण रूप से सन्तोष-जनक नहीं हुआ। क्योंकि संसार का नियम शिक्षावली के प्रथम भाग की तरह साधुभाषा में लिखी गई सरल उपदेशावली नहीं है। निष्ठुर शैतान बीच में आकर सब उपदेश-सूत्रों में उलझन डाल देता है। इसी से सब समय अच्छे काम का अच्छा ही फल नहीं होता। एकाएक कोई गोलमाल उठ खड़ा होता है।

अनाथबन्धु के एक बड़ा और दो छोटे भाई थे। बड़ा भाई परदेश में नौकर था और वह महीने में जो पचास रुपये भेजता था उसी से घर का काम चलता था और दोनों छोटे भाई पढ़ते-लिखते थे।

यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं कि आजकल पचास रुपये महीने में घर का खर्च चलना ही कठिन है। किन्तु बड़े भाई की स्त्री श्यामा के अहङ्कार के लिए इतने रुपये ही यथेष्ट थे। स्वामी लगातार साल भर

नौकरी में लगा रहता था, इसी लिए उनकी स्त्री लगातार साल भर विश्राम करने की अधिकारिणी थी। वह काम-काज कुछ न करती थी। तथापि उसका रङ्ग-ढङ्ग ऐसा था कि उसके स्वामी की तनग्व्वाह से घर का खर्च चलने के कारण घर भर उसका परम अनुग्रहीत है।

विन्ध्यवासिनी जब सुसराल में आकर गृहलक्ष्मी की तरह दिन-रात घर के काम-काज में लगी रहने लगी तब श्यामाशङ्करी के ओछे हृदय में एक प्रकार की जलन पैदा हो गई। इसका कारण समझना और समझाना कठिन है। जान पड़ता है, उसने अपने मन में सोचा कि मैंझली बहू बड़े घर की लड़की होकर भी केवल दिखावे के लिए गृहस्थी के नीच कामों में लगी रहती है और इसका मतलब केवल मुझे लोगों की नज़र से गिराना ही है। चाहे जिस कारण से हो, पचास रुपये का महीना कमानेवाले स्वामी की स्त्री धनी घराने की लड़की को अच्छी नज़र से देख न सकी। उसे मैंझली बहू की नम्रता के भीतर असह्य अभिमान के लक्षण देख पड़ने लगे।

इधर अनाथबन्धु ने गाँव में आकर एक लाइब्रेरी स्थापित की। दस-बीस स्कूल के छात्रों को जमा करके आप सभापति होकर अखबारों में तार द्वारा सभा के समाचार भेजने लगे। यहाँ तक कि किसी-किसी अँगरेज़ी के अखबार के विशेष संवाददाता बनकर उन्होंने गाँव के लोगों को विस्मित कर दिया। किन्तु गरीबी के घर में एक पैसा लाने की कोई सूरत नहीं हुई बल्कि व्यर्थ का खर्च और भी बढ़ गया।

विन्ध्यवासिनी कोई नौकरी करने के लिए बारम्बार अनाथबन्धु से कहने लगी। किन्तु उन्होंने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। स्त्री

से कहा—मेरे लायक नौकरियाँ ज़रूर हैं; लेकिन पक्षपाती गवर्नमेंट उन जगहों पर बड़े बड़े अँगरेज़ों को नौकर रखती है। बङ्गाली के हज़ार योग्य होने पर भी उसके उन जगहों के पाने की कुछ भी आशा नहीं है।

श्यामाशङ्करी अपने देवर और देवरानी को सुनाकर हर घड़ी स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से वाक्यबाणों की वर्षा करने लगी। गर्व के साथ अपनी गरीबी का उल्लेख करके कहने लगी—हम गरीब आदमी हैं, बड़े आदमी की लड़की और दामाद का पालन-पोषण कैसे करें ? वहाँ तो मज़े में थे, कोई दुःख न था—यहाँ सूखी रोटियाँ किस तरह खाई जायँगी ?

सास बड़ी बहू को डरती थीं। मँझली बहू का पक्ष लेकर कुछ कहने का साहस उन्हें नहीं होता था। मँझली बहू भी पचास रुपये महीने की रोटियों और कटुवाक्यों को चुपचाप हज़म करने लगी।

इसी बीच में कुछ दिनों की छुट्टी पाकर अनाथबन्धु के बड़े भाई घर आये और आकर नित्य अपनी स्त्री के मुख से उद्दीपनापूर्ण ओजस्विनी भाषा की वक्तृताएँ सुनने लगे। अन्त को जब नित्य रात को नींद का आना हराम हो गया तब एक दिन अनाथबन्धु को बुलाकर शान्त भाव से स्नेह के साथ उन्होंने कहा—तुमको कोई नौकरी ढूँढ़ने की कोशिश करनी चाहिए, केवल मैं अकेला किस तरह गृहस्थी का बोझ सँभाल सकता हूँ।

अनाथबन्धु ने लात खाये हुए साँप की तरह लम्बी साँसें लेकर अपने मन का भाव प्रकट किया। दो बेला अत्यन्त अखाद्य सूखी रोटी और मोटा भात देकर स्त्री का ताने मारना और भाई का नौकरी तलाश करने

के लिए कहना ! वे उसी समय स्त्री को लेकर सुसराल जाने के लिए तैयार हो गये ।

किन्तु स्त्री किसी तरह इस बात पर राजी नहीं हुई । उसने अपनी राय यह ज़ाहिर की कि बड़े भाई की रोटी और भावज की गाली पर छोटे भाई का पारिवारिक अधिकार है, किन्तु सुसराल में जाकर रहना बड़ी ही लज्जा की बात है । क्योंकि उस पर कोई दावा नहीं है । विन्ध्यवासिनी सुसराल में दीन-हीन की तरह भुक्कर रह सकती है, किन्तु बाप के यहाँ वह अपनी इज्जत बनाये रखकर सिर उठाकर रहना चाहती है ।

इसी समय गाँव के हाईस्कूल में थर्ड मास्टर की जगह खाली हुई । अनाथबन्धु के भाई और विन्ध्यवासिनी दोनों ही अनाथबन्धु से वहाँ नौकरी करके लिए बारम्बार कहने लगे । इसका भी फल उलटा ही हुआ । अपने सगे भाई और स्त्री को ऐसी अत्यन्त तुच्छ नौकरी के लिए अनुरोध करते देखकर वे बहुत कुढ़े और संसार के सब काम-काज की ओर से उन्हें पहले से चौगुनी विरक्ति हो गई ।

तब उनके बड़े भाई ने बहुत सी मीठी बातें कहकर उनको मनाया । सभी ने अपने मन में कहा—अब कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है । अनाथबन्धु किसी तरह घर में ही बने रहें—कहीं रुठकर चले न जायँ—यही ग़नीमत है ।

छुटी समाप्त होने पर अनाथबन्धु के दादा नौकरी पर चले गये । श्यामाशङ्करी कुछ दिन तक अपने रुद्ध आक्रोश से मुँह फुलाकर एक बड़ा भारी कुदर्शन चक्र बनाये रही । अनाथबन्धु ने विन्ध्यवासिनी से

आकर कहा—आजकल विलायत गये बिना कोई अच्छी नौकरी नहीं मिलती। मैं विलायत जाने का इरादा करता हूँ। तुम किसी बहाने से अपने बाप से कुछ रुपये माँगो।

एक तो विलायत जाने की बात सुनकर विन्ध्यवासिनी के सिर पर वज्र सा गिर पड़ा। उसके ऊपर पिता के रुपये माँगने की बात सुनकर वह मानों लजा के मारे मर गई।

ससुर से भी अपने मुँह से रुपये माँगने में अनाथबन्धु के अहङ्कार ने बाधा डाली। किन्तु लड़की छल या कौशल से अपने बाप से रुपये नहीं ला सकती—इसका अर्थ कुछ भी उनकी समझ में नहीं आया। इस बात को लेकर अनाथबन्धु स्त्री पर बहुत बिगड़े और स्त्री से बोलना तक छोड़ दिया। रोते-रोते विन्ध्यवासिनी की आँखें फूल उठीं। इसी तरह कुछ दिन बीत गये।

अन्त को आश्विन का महीना और दुर्गापूजा का समय निकट आया। दुर्गापूजा बङ्गालियों का एक बड़ा भारी त्यौहार होता है। कन्या और दामाद को लाने के लिए राजकुमार बाबू ने बहुत से सामान के साथ आदमी भेजा। साल भर के बाद कन्या अपने स्वामी के साथ पिता के घर आई। अबकी दामाद की पहली से बहुत बढ़कर खातिर हुई। विन्ध्यवासिनी भी बाप के घर आनन्द मनाने लगी।

उस दिन छठ थी। कल सप्तमी से पूजा का आरम्भ होगा। धूमधाम, व्यग्रता और कोलाहल का अन्त न था। दूर और निकट के नातेदारों से राजकुमार बाबू का घर भर गया।

रात को काम-काज से थकी हुई विन्ध्यवासिनी लेटते ही सो गई । पहले जिस कमरे में विन्ध्यवासिनी रहती थी, यह वह कमरा न था । अबकी विशेष आदर जताने के लिए, राजकुमार बाबू ने अपना स्वाम कमरा विन्ध्यवासिनी को रहने के लिए दिया है । अनाथबन्धु कब सोने के लिए कमरे में आये, यह विन्ध्यवासिनी को मालूम भी नहीं हुआ । वह उस समय गहरी नींद में खराटे ले रही थी ।

बड़े तड़के से ही शहनाई बजने लगी । किन्तु थकी हुई विन्ध्य-वासिनी की आँखें नहीं खुलीं । कमला और भुवनमोहिनी नाम की दो सखियाँ छिपकर औरत-मर्द की बातचीत सुनने के इरादे से विन्ध्य-वासिनी के कमरे के दरवाजे पर गईं । वहाँ कमरा बन्द पाकर और बातचीत की आहट न पाकर दोनों सखियाँ ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़ीं । उस हँसी के शब्द से विन्ध्यवासिनी की आँख खुल गई । अनाथबन्धु कब उसके पास से उठकर चले गये, इसकी उसे कुछ खबर न थी । लज्जित हो पलँग से नीचे पैर रखते ही उसने देखा, उसकी मा का लोहे का मन्दूक खुला पड़ा है और उसके भीतर राजकुमार बाबू का जो कैशबक्स रक्खा रहता था, वह भी नहीं है ।

तब उसे याद आया कि कल शाम को माता का चाभियों का गुच्छा खो जाने से बड़ी खलबली पड़ गई थी । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्हीं चाभियों को चुराकर किसी ने यह चोरी की है । तब एकाएक उसे यह खयाल हुआ कि चोर ने उसके स्वामी को किसी तरह की चोट न पहुँचाई हो ! कलेजा धक से हो उठा । पलँग के नीचे नज़र डालकर

देखा तो पाये के पास मा की चाभियों के गुच्छे के नीचे दबी हुई एक चिढ़ी रखी है ।

चिढ़ी उसके स्वामी के ही हाथ की लिखी हुई थी । खोलकर उसे पढ़ने से मालूम हुआ कि अनाथबन्धु ने किसी मित्र की सहायता से विलायत जाने के लिए जहाज़ का किराया प्राप्त कर लिया है । अब वहाँ का खर्च चलाने के लिए और कोई उपाय न देखकर रात को समुद्र का धन हथियाकर, बरामदे में लगी हुई सीढ़ी से बाग़ में उतरकर, दीवार फाँदकर वे भाग गये हैं । आज सबेरे ही जहाज़ छूट गया है ।

पत्र पढ़कर विन्ध्यवासिनी के शरीर का सारा खून ठण्डा पड़ गया । वहीं पर खाट का पाया पकड़कर वह बैठ गई । उसकी देह के भीतर और कानों में निःस्तब्ध कालरात्रि के भिल्लीभङ्गार के समान एक प्रकार का भयानक कर्कश शब्द जैसे गूँज उठा । उस समय घर के आँगन से, पड़ोसियों के घर से और दूर के मकानों से बहुत सी शहनाइयों का स्वर उठकर आकाश में गूँज रहा था । केवल कलकत्ते में ही नहीं, सारे बङ्गाल में उस समय लोग आनन्द-मग्न हो रहे थे ।

घर भर में शरद ऋतु का उज्ज्वल धाम फैल गया । इतना दिन चढ़ने पर भी उत्सव के दिन विन्ध्यवासिनी के कमरे का द्वार बन्द देखकर कमला और भुवनमोहिनी हँसते-हँसते किवाड़े पीटने लगीं । तब भी उत्तर न पाकर, कुछ डरकर जोर से विन्ध्यवासिनी को पुकारने लगीं ।

विन्ध्यवासिनी ने भर्पाई हुई आवाज़ में कहा—आती हैं; तुम इस समय जाओ ।

दोनों सखियाँ विन्ध्यवासिनी की तबीयत खराब होने की आशङ्का से उसकी मा को बुला लाईं । माता ने आकर कहा—बिटिया, कैसी तबीयत है—अभी तक दर्वाज़ा क्यों बन्द कर रक्खा है ?

विन्ध्यवासिनी ने उमड़े हुए आँसुओं को रोककर कहा—ज़रा बाबूजी को बुलाओ !

माता बहुत ही डरीं । वे उसी समय पति को बुला लाईं । विन्ध्यवासिनी जल्दी से द्वार खोलकर माता और पिता को कमरे के भीतर ले गई और भीतर जाकर जल्दी से किवाड़े बन्द कर लिये ।

तब विन्ध्यवासिनी ने ज़मीन पर लोटकर अपने बाप के दोनों पैर पकड़कर छाती फाड़कर निकल रहे आँसुओं को बहाते हुए गद्गद स्वर से कहा—बाबूजी, मुझे माफ़ करो, मैंने तुम्हारे सन्दूक से रुपये निकाल लिये हैं ।

माता और पिता सन्नाटे में आकर पलंग पर बैठ गये ।

विन्ध्यवासिनी ने कहा—अपने स्वामी को विलायत भेजने के लिए उसने यह काम किया है ।

पिता ने पूछा—तूने हमसे क्यों नहीं माँगा ?

विन्ध्यवासिनी ने कहा—आप विलायत जाने में रोक-टोक न करें इसलिए नहीं माँगे ।

राजकुमार बाबू मन में बहुत ही नाराज़ हुए । माता रोने लगी और बेटी भी रोने लगी । कलकत्ते में चारों ओर विचित्र स्वर से उत्सव के बाजे बज रहे थे ।

जो विन्ध्यवासिनी बाप से भी कभी रुपये नहीं माँग सकती और जो स्त्री स्वामी के लेश भर असम्मान को अपने सगे से भी छिपाने में प्राण-पण कर सकती थी उसका वह आत्माभिमान और पति के गौरव का दम्भ चूर्ण होकर प्रिय और अप्रिय, परिचित और अपरिचित सबके पैरों के नीचे धूल की तरह ठोकरें खाने लगा । पहले से ही सलाह करके, कुचक्र रचकर, चाभी चुराकर, स्त्री की सहायता से रात को ही चोरी करके अनाथबन्धु विलायत भाग गये हैं । इस बात की चर्चा नातेदारों से भरे घर में चारों ओर जोर-शोर से होने लगी । दर्वाजे के पास खड़े होकर भुवनमोहिनी, कमला, अनेक स्वजन, पड़ोसी और नौकर-चाकरों ने सब बातें सुनी थीं । लड़की के बन्द कमरे में उत्कण्ठा और घबराहट के साथ राजकुमार बाबू और उनकी स्त्री को जाते देखकर सभी लोग कौतूहल और आशङ्का के मारे व्यग्र होकर वहाँ जमा हो गये थे ।

विन्ध्यवासिनी ने किसी को भी मुँह नहीं दिखाया । दर्वाजा बन्द किये खाना-पीना छोड़कर उसी कमरे में पड़ी रही । उसके इस शोक से किसी को दुःख नहीं हुआ । कुचक्र रचनेवाली की दुष्ट बुद्धि पर सबको बड़ा विस्मय हुआ । सबने सोचा, मौक़ा न पड़ने के कारण अब तक विन्ध्यवासिनी के आचरण छिपे हुए थे । निरानन्द घर में किसी तरह पूजा का उत्सव सम्पन्न हो गया ।

(३)

अपमान और विषाद से सिर झुकाये हुए विन्ध्यवासिनी सुसराल आई । वहाँ पुत्र के वियोग से कातर विधवा सास के साथ पति के

विरह में पीड़ित बहू का मेल और भी बढ़ गया। दोनों परस्पर एक दूसरे के दुःख का अनुभव करती हुई चुपचाप शोक की छाया के नीचे गहरी सहिष्णुता के साथ घर के छोटे से छोटे काम को भी अपने हाथ से सम्पन्न करने लगीं। सास जितना निकट आई, पिता-माता उतना ही दूर चले गये। विन्ध्यवासिनी ने अपने मन में अनुभव किया कि सास गरीब है और मैं भी गरीब हूँ। हम दोनों एक ही दुःख के बन्धन में पड़ी हुई हैं। माता-पिता अमीर हैं, उनकी अवस्था और हमारी अवस्था में बड़ा अन्तर है। एक तो गरीब होने के कारण विन्ध्यवासिनी उनसे बहुत दूर है, उसके ऊपर चोरी स्वीकार करके वह और भी बहुत नीचे गिर गई है। कौन जाने, स्नेह के सम्बन्ध का बन्धन इतनी बड़ी विभिन्नता के बोझ को सह सकता है या नहीं !

अनाथबन्धु विलायत जाने पर पहले तो स्त्री को बराबर चिट्ठी लिखते रहे। किन्तु धीरे-धीरे चिट्ठियों का आना कम हो चला और जो चिट्ठियाँ आती भी थीं उनमें अलक्षित भाव से एक प्रकार का घृणा का भाव भी झलकता था। अनाथबन्धु की अशिक्षिता, घर के काम-काज में लगी रहनेवाली, स्त्री की अपेक्षा विद्या-बुद्धि और रूप-गुण में अत्यन्त श्रेष्ठ अनेक अँगरेज़ कन्याएँ उनको सुयोग्य, सुबुद्धि और सुरूप कहकर उनका आदर करती थीं। ऐसी अवस्था में अगर अनाथबन्धु अपनी धोती पहननेवाली, घूँघट काढ़े रहनेवाली, काली औरत को अपने योग्य न न समझें तो कोई विचित्र बात नहीं।

किन्तु तो भी जब रुपये की कमी हुई तब इस बङ्गाली के लड़के को उसी औरत को तार देने में कुछ भी सङ्कोच नहीं मालूम हुआ और उस

बङ्गाली औरत ने ही दोनों हाथों में केवल चूड़ियाँ रखकर एक-एक करके सब गहने बेचकर स्वामी के पास रुपये भेजे। गाँव में सुरक्षित स्थान न होने के कारण विन्ध्यावासिनी के सब कीमती ज़ेवर पिता के यहाँ ही रक्खे हुए थे। स्वामी की नातेदारी और परिवार में काम-काज के अवसर पर जाने का बहाना करके विन्ध्यवासिनी ने अपने सब गहने मँगा लिये। अन्त को अपनी बनारसी सारी और दुशाला तक बेचकर विन्ध्यवासिनी ने रुपये भेजे और बहुत अनुनय-विनय कर के, आँसुओं से पत्र की हर एक लाइन भिगोकर, पति को लिखा कि तुम घर लौट आओ।

अनाथबन्धु एलबर्ट फ़ैशन दाढ़ी रखाकर, कोट-पतलून पहनकर, बैरिस्टरी पास करके लौट आये। आकर वे कलकत्ते के एक होटल में ठहरे। पिता के घर में रहना असम्भव था, क्योंकि एक तो वहाँ बैरिस्टर साहब के रहने के लायक जगह नहीं थी, दूसरे उनके जाने से गाँव के लोग उनके भाइयों की जाति से च्युत कर देते। अनाथबन्धु के ससुर भी आचारनिष्ठ कट्टर हिन्दू थे, वे भी जातिच्युत को आश्रय नहीं दे सकते थे।

धन की कमी के कारण बहुत जल्द होटल छोड़कर एक किराये के घर में रहना पड़ा। उस घर में स्त्री को लाने के लिए वे तैयार न थे। विलायत से आने के बाद केवल दो-तीन घण्टे के लिए वे स्त्री और माता से मिलने गये थे। उसके बाद फिर उनसे मुलाक़ात नहीं की।

दोनों शोक से पीड़ित स्त्रियों के लिए केवल यही एक सान्त्वना थी कि अनाथबन्धु अपने देश में पास ही थे। साथ ही अनाथबन्धु की बैरिस्टरी की कीर्त्ति से उनके मन में गर्व की सीमा नहीं रही। विन्ध्यवासिनी अपने को यशस्वी स्वामी के अयोग्य समझकर मन ही मन धिक्कार देने

लगी। साथ ही अपने को अयोग्य समझकर उसको अपने स्वामी के गौरव का अधिक गर्व भी हुआ। वह दुःख से पीड़ित होने पर भी गर्व से झुली नहीं समाती थी। वह स्लेच्छन्चार से घृणा करती थी, तो भी स्वामी को देखकर उसने अपने मन कहा—आजकल अनेक बङ्गाली साहवी पोशाक पहनते हैं, लेकिन वह पोशाक ऐसी किसी के नहीं खिलती ! अनाथबन्धु तो पूरे विलायती साहव जान पड़ते हैं ! कोई उनके बङ्गाली नहीं कह सकता।

जब घर का खर्च चलना कठिन हो गया तब अनाथबन्धु ने क्षोभ के साथ यह ठहराया कि पतित भारत में गुण का आदर नहीं है और उनके हमपेशा लोग गुप्त रूप से डाह के मारे उनकी उन्नति और प्रसिद्धि के मार्ग में बाधा डालते हैं। जब उनके खाने की टेबिल पर अण्डों के अभाव को साग-सब्जी पूर्ण करने लगी—भुने हुए मुर्गे के सम्मानकर स्थान पर भींगा मछली देख पड़ने लगी—वेश-भूषा, टाट-चाट और चिकने मुख की गर्व से उज्ज्वल ज्योति फीकी पड़ चली—जब सुतीव्र निपाद से मिली हुई जीवन-तन्त्री धीरे-धीरे मध्यम की ओर उतर चली तब, उसी समय राजकुमार बाबू के यहाँ एक भारी दुर्घटना हो जाने से अनाथबन्धु के जीवन का प्रवाह एकाएक दूसरी ओर फिर गया। राजकुमार बाबू का लड़का हरकुमार अपने मामा के घर से स्त्री और बालक-समेत घर की ओर आ रहा था। मामा का घर गङ्गा के किनारे पर एक गाँव में था। नावपर हरकुमार आ रहा था। एकाएक नाव उलट जाने से पुत्र-स्त्री-सहित हरकुमार की मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना के बाद विन्ध्यवासिनी के सिवा राजकुमार की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी और कोई नहीं रहा।

दारुण शोक कुछ शान्त होने पर राजकुमार ने अनाथबन्धु के पास जाकर बहुत कुछ अनुनय-विनय करके कहा—बेटा, तुमको प्रायश्चित्त करके जाति में मिलना होगा। तुम्हारे सिवा अब मेरे कोई नहीं है।

अनाथबन्धु उत्साह के साथ इस बात पर राज़ी हो गये। उन्होंने मन में सोचा, जो बार-लाइब्रेरियों में पड़े रहनेवाले स्वदेशी बैरिस्टर उनसे डाह करते हैं और उनकी असामान्य प्रतिभा के प्रति यथेष्ट सम्मान नहीं दिखाते, उनसे इसी उपाय से बदला चुकाना होगा।

राजकुमार बाबू ने पण्डितों से व्यवस्था लिखाई। उन्होंने कहा—अनाथबन्धु ने अगर विलायत में ***मांस न खाया हो तो वे प्रायश्चित्त करके जाति में लिये जा सकते हैं।

विदेश में यद्यपि उक्त पशु का निषिद्ध मांस उनके प्रिय भोजनों में था, तथापि उसके भोजन को अस्वीकार करने में उन्हें कुछ भी सङ्कोच नहीं हुआ। अपने प्रिय मित्रों से अनाथबन्धु ने कहा—समाज जब अपनी इच्छा से भूठ बात सुनना चाहता है तब एक ज़रा सी बात कहकर उसे अपने अनुकूल बनाने में मुझे कुछ दोष नहीं देख पड़ता। जिस जिह्वा ने ***मांस खाया है उसे गोबर और भूठ नाम के दो निन्दित पदार्थों द्वारा शुद्ध कर लेना हमारे नव्य समाज का नियम है। मैं उस नियम का उल्लङ्घन करना नहीं चाहता।

प्रायश्चित्त करके समाज में मिलने के लिए एक शुभ दिन निश्चित हुआ। इसी बीच में अनाथबन्धु ने केवल धोती ही नहीं पहनी, बल्कि तर्क और युक्तियों के द्वारा वे विलायती समाज के मुँह में स्याही और

हिन्दू-समाज के मुँह में चूना भी पोतने लगे। जिसने सुना, वही खुश हो उठा।

आनन्द और गर्व से विन्ध्यवासिनी का प्रीति-सुधा-सिञ्चित कोमल हृदय उच्छ्वसित हो उठा। उसने मन में कहा—विलायत से जो आता है वह एकदम साहब बनकर आता है; किन्तु मेरे स्वामी बिलकुल विकारहीन भाव से लौट आये हैं। उनकी हिन्दू-धर्म पर भक्ति पहले से भी अब बढ़ गई है।

निर्दिष्ट मुहूर्त्त के दिन ब्राह्मण-पण्डितों से राजकुमार बाबू का घर भर गया। उनको खिलाने-पिलाने और बिदाई देने का खूब गहरा प्रबन्ध किया गया था।

घर के भीतर ज़नाने में भी धूमधाम की कमी न थी। निमन्त्रित नातेदार, इष्ट-मित्र और पास-परोसियों को खिलाने-पिलाने और बिठाने-उठाने का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। उस कोलाहल और काम-काज की भीड़ के भीतर विन्ध्यवासिनी प्रसन्न मुख लिये, शरद ऋतु की धूप से उद्भासित प्रभातवायु-वाहित मेघ-खण्ड की तरह, आनन्द के आवेश में इधर-उधर फिर रही थी। आज के दिन की संसार की सब घटनाओं का प्रधान नायक उसका स्वामी है। आज मानों सारी वङ्गभूमि एक रङ्गभूमि है और ड्राप सीन उठाकर केवल अनाथबन्धु को वह विस्मित विश्वासी दर्शकों के आगे उपस्थित किये हुए है। प्रायश्चित्त अपराध का स्वीकार नहीं है। वह मानों लोगों पर अनुग्रह करना है। अनाथबन्धु विलायत से आकर हिन्दू-समाज में प्रवेश कर हिन्दू-समाज को मानो गौरव-शाली बना रहे हैं और उसी गौरव की छटा सारे देश से आकर विन्ध्य-

वासिनी के मुख पर प्रतिफलित होकर, उसके प्रेम-प्रमुदित मुख के ऊपर, परम सुन्दर महिमा की ज्योति को चमका रही है। इतने दिन के तुच्छ जीवन का सारा दुःख और अपमान आज दूर हो गया है। आज विन्ध्य-वासिनी अपने जनपरिपूर्ण पिता के घर में सब आत्मीय स्वजनों के आगे सिर ऊँचा करके गौरव के आसन पर अधिष्ठित हुई है। स्वामी के महत्त्व ने आज अयोग्य स्त्री को संसार के निकट सम्मान का पात्र बना दिया।

प्रायश्चित्त का कृत्य समाप्त हो गया। अनाथबन्धु समाज में मिल गये। अभ्यागत आत्मीय, स्वजन और ब्राह्मणों ने अनाथबन्धु के साथ बैठकर भर पेट भोजन किया।

आत्मीय स्त्रियों ने दामाद को देखने के लिए भीतर ज़नाने में बुला भेजा। अनाथबन्धु मज़े में पान चबाते-चबाते, प्रसन्न हँसता हुआ चेहरा लिये, ज़मीन तक लटकती हुई चादर लिथारते हुए भीतर गये।

भोजन के बाद ब्राह्मणों को दक्षिणा देने का प्रबन्ध हो रहा था और ब्राह्मण लोग सभा में बैठे तुमुल कलह के साथ अपना-अपना पाण्डित्य प्रकट कर रहे थे। वृद्ध राजकुमार बाबू क्षण भर विश्राम करने की नीयत से उस सभा के बीच में बैठे हुए स्मृतियों के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क सुन रहे थे। इसी समय दरवान ने आकर उसके हाथ में एक विज़िटिंग कार्ड दिया और कहा—एक मेम साहब आई हैं।

राजकुमार बाबू चौंक उठे। उसके बाद कार्ड में देखा। उसमें अँगरेज़ी में लिखा हुआ था—मिसेज़ अनाथबन्धु सरकार—अर्थात् अनाथबन्धु सरकार की स्त्री।

राजकुमार बाबू बहुत देर तक निहारते रहकर भी इन कई अक्षरों के शब्दों का ठीक-ठीक मतलब न समझ सके। इसी समय विलायत में शीघ्र ही आई हुई, लाल लाल गालोंवाली, भूरे बालोंवाली, कंजी आँखोंवाली, दूध के समान गोरे रङ्गवाली, हरिण के समान चाल चलनेवाली एक अँगरेज़ रमणी उस सभा के बीच आकर खड़ी हो गई और हर एक के मुँह को गौर से निहारने लगी; किन्तु उसे अपना परिचित प्रिय मुखड़ा न देख पड़ा। अकस्मात् मेम को देखकर स्मृति-संहिताओं के तर्क जहाँ के तहाँ पड़े रह गये। सभा में मसान का सा गहरा सन्नाटा छा गया।

इसी समय चादर के छोर से ज़मीन बहारते हुए अनाथबन्धु फिर रङ्गभूमि में आकर उपस्थित हुए। उसी दम वह अँगरेज़ी रमणी दौड़कर उनके पास आई; उनसे लिपटकर उनके ताम्बूल-रञ्जित ओट में उसने एक स्त्री-पुरुष के मिलन का चिह्न—चुम्बन—अङ्कित कर दिया।

उस दिन सभा में स्मृति-संहिताओं के सम्बन्ध से फिर कोई तर्क नहीं उठा।

— — —

सुभा

(१)

लड़की का नाम जब सुभाषिणी रक्खा गया था तब कौन जानता था कि वह गूँगी होगी ? उसकी दो बड़ी बहनों का नाम सुकेशिनी और सुहासिनी रक्खा गया था । इसी से उसी अनुप्रास पर पिता ने छोटी लड़की का नाम सुभाषिणी रक्खा । इस समय सब उसे संक्षेप में सुभा कहते हैं ।

बङ्गालियों के यहाँ के दस्तूर के मुताबिक बहुत खोजकर और बहुत से रुपये खर्च करके दोनों बड़ी लड़कियों का ब्याह हो गया । किन्तु छोटी लड़की सुभा, माता-पिता के नीरव हृदय-भाव की तरह, घर में मौजूद थी ।

वह कुछ बोलती नहीं; और कुछ अनुभव करती है, यह भी किसी को जान नहीं पड़ता । इस कारण उसके सामने ही उसके भविष्य के सम्बन्ध में सब लोग दुश्चिन्ता प्रकट करते थे । इस बात को वह लड़की लड़कपन से ही समझ गई थी कि वह विधाता के अभिशाप की मूर्ति बनकर अपने पिता के यहाँ उत्पन्न हुई है । उसका फल यह हुआ कि वह सर्वदा अपने को सर्व-साधारण की दृष्टि से छिपाकर रखना चाहती थी । समझती थी कि मुझे सब लोग भूल जायँ तो अच्छा । किन्तु वेदना कोई कहीं भूलता है ? पिता-माता के हृदय में वह सदा खटका करती थी ।

खासकर सुभा की मा उसे अपनी ही एक त्रुटि समझती थी। कारण, पुत्र की अपेक्षा कन्या को माता अपना अंश समझती है। कन्या में कोई असम्पूर्णता—कमी—होती है तो माता उसे विशेष रूप से अपनी लज्जा का कारण समझती है। बल्कि कन्या के पिता वाणी-कण्ठ महाशय सुभा को अपनी अन्य कन्याओं की अपेक्षा अधिक प्यार करते थे। किन्तु माता उसे अपने गर्भ का कलङ्क समझकर उसके प्रति बहुत ही प्रतिकूल थी।

सुभा बोल नहीं सकती थी, किन्तु उसके बदले उसके बड़ी-बड़ी पलकों से शोभित बड़ी-बड़ी आँखें थीं—और उसके दोनों ओर भाव के आभासमात्र से नव पल्लव के समान हिल उठते थे।

शब्दों से हम जो भाव प्रकट करते हैं वह अधिकांश हमें अपनी चेष्टा में गढ़ लेना होता है—वह कुछ-कुछ तर्जुमा करने के समान है। वह तर्जुमा अक्सर ठीक नहीं होता। क्षमता के अभाव से अक्सर उसमें भूल हो जाती है। किन्तु उज्ज्वल-कृष्ण बड़ी-बड़ी आँखों का तर्जुमा करना नहीं पड़ता—मन आप ही उनके ऊपर छाया डालता है; भाव आप ही उनके ऊपर कभी खुलता है, कभी मुँदता है, कभी भासित हो उठता है, कभी बुझ जाता है, कभी अस्त हो रहे चन्द्रमा के समान एकटक ताकता है और कभी द्रुतचञ्चल बिजली की तरह दसों दिशाओं में टकराने लगता है। मुख के भाव के सिवा जन्म से ही जिसके अन्य भाषा नहीं है उसकी नेत्रों की भाषा असीम उदार और पाताल की तरह गम्भीर होती है। वह स्वच्छ आकाश की तरह उदय-अस्त और छाया तथा प्रकाश की निःस्तब्ध रङ्गभूमि होती है।

ऐसे वाक्यहीन मनुष्यों में बृहत् “प्रकृति” के समान एक निर्जन महत्त्व होता है। इसी कारण साधारण बालक-बालिकाएँ सुभा को एक प्रकार के भय की दृष्टि से देखते थे, उसके साथ खेलते न थे। वह सूनसान दुपहर की तरह शब्दहीन और संगियों से हीन थी।

(२)

उस गाँव का नाम चंडीपुर था। गाँव की नदी बङ्गाल की छोटी नदियों में से थी—गृहस्थ के घर की औरत के समान थी। बहुत दूर तक उसका फैलाव न था। आलस्य-हीन कुशकाय नदी अपने कूल की रक्षा करती हुई अपना काम करती चली जाती है। दोनों किनारे के गाँवों के साथ उसका मानों एक-न-एक सम्बन्ध अवश्य है। दोनों किनारों पर बस्ती थी। किनारे ऊँचे थे और उन पर घने पेड़ों की छाया विराजमान थी। नीचे ग्रामलक्ष्मी के समान वह नदी आत्म-विस्मृत भाव से, प्रफुल्ल हृदय से शीघ्रगामिनी होकर असंख्य कल्याण-कार्य करती बह रही थी।

वाणीकण्ठ का घर बिलकुल नदी के किनारे पर ही था। उनका घर, हाता, गोशाला, फूस का ढेर, इमली का पेड़ और केले का बाग़ हर एक नाव पर आने-जानेवाले मनुष्य की दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहता था। इस गृहस्थी की टीमटाम के भीतर वह गूँगी लड़की भी किसी की दृष्टि में पड़ती थी या नहीं सो तो नहीं मालूम, किन्तु वह जब काम-काज से छुट्टी पाती थी तब उसी नदी के किनारे आकर बैठती थी।

प्रकृति मानों उसके अभाव को पूर्ण कर देती है। वह मानों सुभा की ओर से बातें करती है। नदी की कलध्वनि, लोगों का कोलाहल, माँभियों का गाना, पक्षियों की बोली, वृक्षों के पत्तों का मर्मर शब्द, सब मिलकर, चारों ओर के चलने-फिरने और आन्दोलन-कम्पन के साथ एक होकर, समुद्र की लहरों के समान, बालिका के चिर-निःस्तब्ध हृदय-उपकूल के निकट आकर मानों हिलोरें लेता है। प्रकृति के ये विविध शब्द और विचित्र गतियाँ भी गूँगे की भाषा हैं—बड़ी-बड़ी आँखोंवाली सुभा की जो भाषा है उसी का यह एक विश्वव्यापी विस्तार है। भिल्ली-भङ्गार-मय तृण-पूर्ण भूमि से लेकर शब्दातीत नक्षत्र-लोक तक केवल इङ्गित, अङ्गभङ्गी, सङ्गीत, क्रन्दन और दीर्घ निःश्वास ही है।

दोपहर को जब माँभी और मल्लाह खाना खाने जाते थे, गृहस्थ लोग सोते थे, पक्षी चुप हो रहते थे, नावों का चलना बन्द हो जाता था, जन-पूर्ण जगत् काम-काज के बीच में सहसा थमकर भयानक निर्जन-मूर्ति धारण करता था तब कड़ी धूप से प्रकाशित महत् आकाश के नीचे केवल गूँगी प्रकृति (Nature) और गूँगी लड़की सुभा दोनों आमने-सामने चुपचाप बैठे-बैठे एक दूसरे को निहारा करती थीं। प्रकृति फैली हुई धूप में, और सुभा छोटे-छोटे पेड़ों की छाँह में रहती थी।

सुभा के कुछ अन्तरङ्ग मित्र भी थे। उसकी सखी दो गउएँ थीं। एक का नाम श्यामा और दूसरी का कल्याणी था। बालिका सुभा के मुख से उन गउओं ने अपने ये नाम कभी सुने न थे; किन्तु वे उसके पैरों की आहट को पहचानती थीं। सुभा के पैरों की आहट में भी एक वाक्यहीन करुण स्वर था। गउएँ उसके मर्म को भाषा की अपेक्षा

सहज में ही समझ लेती थीं। सुभा कभी उनको दुलराती थी, कभी झिड़कती थी और कभी अनुनय-विनय का भाव दिखाती थी। दोनों गउएँ इन बातों को मनुष्य की अपेक्षा बहुत अच्छी तरह समझती थीं।

इनके सिवा सुभा के मित्रों में एक बकरी और एक बिल्ली भी थी। किन्तु उनके साथ सुभा की ऐसी गहरी और बराबर की दोस्ती न थी। तो भी वे सुभा के बहुत ही अनुगत थीं। बिल्ली जब दिन और रात को कभी-कभी सुभा की गोद में बैठकर सुख की नींद की तैयारी करती थी और सुभा उसकी गर्दन और पीठ पर कोमल हाथ फेरती थी तब वह बिल्ली भी ऐसा भाव प्रकट करती थी कि उससे उसकी सुख की नींद में विशेष सहायता पहुँचती है।

(३)

उन्नत श्रेणी के जीवों में सुभा को और भी एक साथी मिल गया था। किन्तु यह ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है कि सुभा के साथ उसका कैसा सम्बन्ध था। क्योंकि वह भाषाविशिष्ट जीव था और इसी कारण दोनों की भाषा एक प्रकार की न थी।

वह था गोसाईं जी का छोटा लड़का प्रतापचन्द्र। प्रतापचन्द्र कोई कामकाज न करता था। बहुत चेष्टा करने के बाद माता-पिता ने यह आशा छोड़ दी थी कि प्रताप कुछ कामकाज करके अपनी और अपनी गृहस्थी की उन्नति करेगा। अकर्मण्य लोगों के लिए एक सुभीता यह है कि आत्मीय लोग तो उनसे नाराज़ होते हैं, लेकिन ग़ैर लोगों के वे प्रिय-पात्र हो जाते हैं। क्योंकि किसी काम में लगे न रहने

के कारण वे सरकारी आदमी हो जाते हैं। शहरों में जैसे दो-एक गृह-संपर्कहीन सरकारी बागों का रहना आवश्यक है वैसे ही देहातों में दो-चार अकर्मण्य सरकारी लोगों के रहने की विशेष आवश्यकता होती है। काम-काज, आमोद-प्रमोद आदि में जहाँ एक आदमी कम पड़ता है वहीं वे पास ही अनायास मिल जाते हैं।

प्रतापचन्द्र को सब से बढ़कर काँटा फेंककर मछली पकड़ने का शौक था। इस काम में सहज ही बहुत सा समय बीत जाता है। तीसरे पहर नदी के किनारे प्रतापचन्द्र सदा इसी काम में लगा हुआ देख पड़ता था। इसी अवसर में अक्सर सुभा से उसकी मुलाकात हो जाया करती थी। प्रताप की आदत थी कि वह चाहे जो काम करता हो, एक साथी की उसे आवश्यकता रहती थी। बिना साथी के वह कोई भी काम नहीं कर सकता था। मछली पकड़ने के समय वाक्यहीन साथी ही सबसे अच्छा होता है। इसी कारण प्रताप सुभा की मर्यादा को समझता था। प्रताप और भी अधिक आदर करके सुभा को केवल 'सु' कहा करता था।

सुभा इमली के पेड़ के नीचे बैठी रहती थी और प्रताप, पास ही, पानी में काँटा डालकर उधर ही देखा करता था। प्रताप को सुभा नित्य एक पान का बीड़ा घर से लाकर देती थी। जान पड़ता है, बहुत देर तक बैठे-बैठे ताक-ताककर सुभा अपने मन में इच्छा करती थी कि वह प्रताप की कोई विशेष सहायता कर सकती, उसके किसी काम में लग सकती या किसी तरह यह जता दे सकती कि इस पृथ्वी पर वह भी कम काम की चीज़ नहीं है तो बहुत अच्छा होता। किन्तु इसमें से वह कुछ भी नहीं कर सकती थी। वह मन ही मन विधाता से अलौकिक

क्षमता की प्रार्थना करती थी—मन्त्र के बल से सहसा ऐसा एक विचित्र कार्य कर दिखाना चाहती थी कि उसे देखकर प्रताप के विस्मय का ठिकाना न रहता और वह कहता कि वाह 'सु' में इतनी क्षमता भरी पड़ी है, यह तो मुझे मालूम ही न था ।

मान लो, सुभा अगर जलकुमारी होती; धीरे-धीरे जल से ऊपर उठकर एक नागमणि घाट पर रख जाती; प्रताप तुच्छ मछली पकड़ने के कार्य को छोड़कर उस मणि को लेकर जल में गोता लगाता और पाताल में जाकर देखता, चाँदी के महल में सोने के पलंग पर—कौन बैठा है ?—वही वाणीकण्ठ की गूँगी लड़की सुभा ! सुभा उसी मणिदीप्त गम्भीर निःस्तब्ध पातालपुरी की एकमात्र राजकन्या है ! यह क्या हो नहीं सकता था, यह क्या ऐसी ही असम्भव बात है ! असल में असम्भव कुछ भी नहीं है । किन्तु तो भी सुभा प्रजाशून्य पाताल के राजवंश में उत्पन्न न होकर वाणीकण्ठ के घर में पैदा हुई है और गोसाईं के लड़के प्रताप को किसी तरह आश्चर्य में नहीं डाल सकती !

(४)

सुभा की अवस्था धीरे-धीरे बढ़ती जाती थी । क्रमशः वह मानों अपनी अवस्था के परिवर्तन का अनुभव करने लगी । जैसे किसी पूर्णिमा को किसी समुद्र से एक ज्वार का प्रवाह आकर सुभा के अन्तरात्मा को एक नवीन अनिर्वचनीय चेतनाशक्ति से परिपूर्ण कर रहा था । वह आप अपने को देखती, सोचती और प्रश्न करती थी, किन्तु उसकी समझ में कुछ भी नहीं आता था ।

पूर्णिमा की रात्रि को एक दिन धीरे-धीरे शयनगृह के द्वार को खोलकर, डरते-डरते मुँह निकालकर, सुभा ने बाहर की ओर देखा। देखा, जवानी के रहस्य में, पुलक और विषाद में, असीम निर्जनता की एकदम शेष सीमा तक, यहाँ तक कि उसे भी नाँघकर पूर्णिमा की “प्रकृति” भी परिपूर्ण हो रही है—किन्तु मुख से एक बात भी नहीं कह सकती। निःस्तब्ध व्याकुल प्रकृति के एक प्रान्त में एक व्याकुल बालिका चुपचाप खड़ी हुई थी।

इधर कन्या की अवस्था देखकर पिता-माता की चिन्ता भी दिन-दिन बढ़ने लगी। लोगों ने भी निन्दा करना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि लोगों में वाणीकण्ठ को जातिच्युत कर देने की चर्चा भी चलने लगी। वाणीकण्ठ की अवस्था अच्छी है, खाने-पीने-पहनने की भी कमी नहीं है। इसी लिए उनके शत्रु भी अनेक थे।

एक दिन स्त्री और पुरुष में इस बारे में बहुत बातचीत हुई। कुछ दिनों के लिए वर की खोज में वाणीकण्ठ को विदेश जाना पड़ा।

अन्त को वहाँ से लौट आकर वाणीकण्ठ ने स्त्री से कहा—चलो, कलकत्ते चलो।

विदेश-यात्रा का उद्योग होने लगा। कुहासे से ढके हुए प्रातः-काल की तरह सुभा का हृदय अश्रुवाष्प से एकदम भर गया। एक अनिर्दिष्ट आशङ्का के मारे वह कुछ दिन से बराबर वाक्य-हीन जन्तु की तरह माता-पिता के पास ही रहा करती थी—दोनों बड़ी-बड़ी आँखों से उनकी ओर ताककर वह मानों कुछ समझने की चेष्टा करती थी; किन्तु वे कुछ समझाकर न कहते थे।

इसी बीच में एक दिन तीसरे पहर पानी में काँटा डालकर प्रताप ने हँसते हुए कहा—क्यों री सुभा, तेरा दुलहा मिल गया है, तू ब्याह करने जाती है ? देख, हम लोगों को न भूलना । यह कहकर उसने फिर मल्लूली पकड़ने की ओर मन लगाया ।

मर्मविद्ध हरिणी जैसे शिकारी की ओर ताकती है, चुपचाप कहती है कि मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया था वैसे ही सुभा ने भी प्रताप की ओर देखा । उस दिन वह इमली के पेड़ के नीचे नहीं बैठी । वाणीकण्ठ शयनगृह से उठकर तमाखू पी रहे थे । सुभा उनके पैरों के पास बैठकर उनके मुँह की ओर ताककर रोने लगी । अन्त को उसे सान्त्वना देने में वाणीकण्ठ के भी आँसू निकल आये ।

कलकत्ते की यात्रा का दिन है । सुभा गोशाला में अपने वाल्य-सखी गउआँ से विदा होने के लिए गई । उनको अपने हाथ से खिलाकर, उनके गले में हाथ डालकर, आँखों से यथाशक्ति अपने मन का भाव व्यक्त करती हुई सुभा उनकी ओर ताकती रही । दोनों नेत्रों से टप-टप करके आँसू गिरने लगे ।

उस दिन शुक्लपक्ष की द्वादशी की रात थी । सुभा शयनगृह से बाहर निकलकर उसी चिरपरिचित नदी-तट पर जाकर घास पर लोटने लगी । मानो धरणी को, इस महती मूक मानव-माता को, दोनों हाथों से लिपटाकर वह यह कहना चाहती थी कि तुम माता मुझे जाने न दो, मेरी तरह दोनों हाथ फैलाकर तुम भी मुझे लिपटा रखो ।

कलकत्ते के डेरे में एक दिन सुभा की माता ने सुभा का खूब श्रृङ्गार किया । वालों में तेल डालकर चोटी बाँधी, खूब गहने पहनाये ।

उसके स्वाभाविक सौन्दर्य को यथाशक्ति सजधज में छिपा सा दिया । सुभा की दोनों आँखों से आँसू बह रहे थे । आँखें फूलकर खराब न हो जायँ, इसलिए माता ने उसे झिड़का भी, किन्तु आँसुओं ने उस झिड़की का कुछ भी खयाल नहीं किया ।

मित्र के साथ वर खुद कन्या को देखने आया । कन्या के पिता चिन्तित, शङ्कित और व्यग्र होकर उठ खड़े हुए । मानों देवता खुद अपनी बलि के पशु को पसन्द करने आया हो । माता ने भीतर बहुत कुछ डाँट-डपटकर बालिका के अश्रु-प्रवाह को और भी बढ़ाकर उसे परीक्षक के सामने भेज दिया ।

परीक्षक ने बहुत देर तक देखकर कहा—बुरी नहीं है ।

ख़ासकर बालिका के रोने को देखकर वर ने समझा कि इसमें सहृदयता भी है और माता-पिता के बिछुड़ने की आशङ्का से सहृदय बालिका का हृदय व्यथित हो उठा है । वह हृदय ब्याह के बाद मेरा ही होगा ! सीप के मोती के समान बालिका के आँसुओं ने उसका मूल्य बढ़ा दिया ।

पत्रा देखकर एक शुभ मुहूर्त निश्चित हुआ और उस दिन उसी वर के साथ सुभा का ब्याह हो गया ।

गूँगी लड़की दूसरे को सौंपकर माता-पिता अपने गाँव चल दिये । उनकी जाति भी बची और धर्म भी बच गया ।

वर युक्तप्रान्त में नौकर था । ब्याह के बाद ही वह सुभा को अपने साथ वहीं ले गया । एक सप्ताह के भीतर ही उसे मालूम हो गया कि स्त्री गूँगी है । किन्तु ब्याह के पहले इस बात के न समझने का

दोष वर का ही था । सुभा ने धोखा नहीं दिया था । उसकी दोनों आँखों ने सब खुलासा करके कह दिया था, किन्तु वर उसे समझ नहीं सका । वह चारों ओर ताकती थी, पर मन का भाव व्यक्त करने की भाषा उसके पास न थी, वह क्या करती !

बालिका के चिर-नीरव हृदय में माता-पिता और पितृगृह के वियोग की व्यथा किसी दुखिया के करुण विलाप की तरह गूँजने लगी । अन्तर्यामी के सिवा उस व्यथा को कोई नहीं समझ सकता था ।

अब की बार सुभा का स्वामी, आँखों और कानों के द्वारा, अच्छी तरह जाँच करके एक दूसरी स्त्री ब्याह लाया ।



विचारक

(१)

अनेक अवस्थाएँ बदलने के उपरान्त अन्त को गतयौवना चुन्नी ने जिस पुरुष का आश्रय ग्रहण किया था वह भी जब उसे फटे कपड़े की तरह छोड़ गया तब मुट्ठी भर अन्न के लिए दूसरे आश्रय को खोजने की चेष्टा करने में उसे अत्यन्त धिक्कार मालूम पड़ा ।

जवानी के अन्त में शुभ्र शरद् ऋतु की तरह एक गम्भीर प्रशान्त बहुत ही सुन्दर अवस्था आती है जब जीवन का फल फलने और “फसल” पकने का समय आता है । उस समय वसन्त के समान भारी जवानी की चञ्चलता नहीं सोहती । इतने दिनों में घर के सँभालने का काम समाप्त हो जाता है । अनेक भलाई-बुराई, सुख-दुःख जीवन में परिपाक को प्राप्त होकर भीतर के आत्मा को परिणत अवस्था में पहुँचा देते हैं । उस समय नवीन प्रणय की मुग्ध-दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट करने की फिर प्रवृत्ति नहीं होती—किन्तु पुराना साथी और भी प्यारा हो उठता है । उस समय जवानी का सौन्दर्य धीरे-धीरे शिथिल हो आता है, किन्तु वृद्धावस्था से रहित अन्तःप्रकृति बहुत काल के सहवास से मुख और नेत्रों में मानों बहुत अच्छी तरह अङ्कित हो जाती है । जो कुछ मिला नहीं उसकी आशा छोड़कर, जो छोड़ गये हैं उनके लिए शोक समाप्त करके, जिन्होंने धोखा दिया है उनको क्षमा करके, जो पास

आये हैं—जिन्होंने प्यार किया है—उनको हृदय से लगाकर, सुनिश्चित सुपरीक्षित चिरपरिचित लोगों के स्नेह के घेरे के भीतर निरापद स्थान बनाकर उसी के भीतर सब चेष्टाओं का अन्त होता है और सब आकांक्षाओं की तृप्ति होती है। जवानी के उस स्निग्ध सायङ्काल में, जीवन के उस शान्तिपूर्व में भी जिसे नये सिरों से सञ्चय, नवीन परिचय और नवीन बन्धन के वृथा आश्वास में नवीन चेष्टा के लिए दौड़ना पड़ता है—उस समय भी जिसके लिए विश्राम की शय्या नहीं बिल्ली—उससे बढ़कर शोचनीय संसार में और कोई नहीं है।

चुन्नी ने अपनी जवानी के सायङ्काल में एक दिन सबेरे उठकर देखा कि उसका प्रणयी रात को उसका सञ्चित धन और गहने लेकर भाग गया है—घर का किराया देने के लिए भी एक पैसा नहीं छोड़ा—तीन वर्ष के बच्चे को दूध लाकर पिलाने का भी ठिकाना नहीं रहा। जहाँ चुन्नी ने सोचकर देखा कि अपने जीवन के अड़तीस वर्षों में वह एक आदमी को भी अपना नहीं कर सकी—एक घर के कोने में भी मरने-जीने के लिए ठिकाना नहीं कर सकी—जब उसे देख पड़ा कि आज फिर आँसू पोंछकर दोनों आँखों में अञ्जन लगाना होगा, ओठों में पान की धड़ी जमाकर और दाँतों में मिस्सी लगाकर जीर्ण यौवन को तेल-पानी की चुपड़ से चमकाकर बाज़ार में बैठना होगा, हँसते-हँसते असीम धैर्य के साथ नवीन हृदय हरने के लिए नया जाल फैलाना होगा—तब वह घर के किवाड़े बन्द कर, पृथ्वी पर लोटकर, बार-बार ज़मीन पर अपना सिर पटकने लगी। दिन भर बिना कुछ खाये-पिये मुर्दे की तरह पड़ी रही ! शाम हो आई। दीपक-हीन घर के कोने में अन्धकार

घना हो आया। एकाएक एक पुराना प्रणयी आकर चुन्नी-चुन्नी कहकर दर्वाजा पीटने लगा। चुन्नी अकस्मात् द्वार खोलकर भाड़ू हाथ में लिये बाधिन की तरह गरजकर दौड़ी। रस-पिपासु युवक शीघ्र ही अपनी जान लेकर भाग गया।

चुन्नी का बचा भूख के मारे रो-रोकर खाट के नीचे सो गया था। वह इस गोलमाल में जाग पड़ा और अन्धकार के भीतर मा, मा कहकर रोने लगा।

तब चुन्नी उस रो रहे बालक को प्राणपण से छाती में चिमटाकर, धिजली की तरह दौड़कर, पास के एक कुएँ में कूद पड़ी।

शब्द सुनकर, प्रकाश हाथ में लिये, पड़ोसी लोग कुएँ के पास आ गये। चुन्नी और उसका बचा निकाल लिया गया। चुन्नी उस समय बेहोश थी और लड़का मर चुका था।

अस्पताल में जाकर चुन्नी आराम हो गई। हत्या के अपराध में मजिस्ट्रेट ने उसको सेशन सुपुर्द कर दिया।

(२)

मेशनजज स्टेच्युटरी सिविलियन मनोहरनाथ थे। उनके कठिन विचार से चुन्नी को फाँसी की सज़ा हुई। अभागिनी की अवस्था पर खयाल करके वकीलों ने उसे बचाने के लिए बहुत चेष्टा की, किन्तु कुछ फल न हुआ।

फल न होने का एक कारण था। मनोहरनाथ एक और हिन्दू महिलाओं को देवी कहते हैं, दूसरी ओर स्त्री-जाति के प्रति उन्हें

आन्तरिक अविश्वास है। उनका मत यह है कि रमणियाँ कुल के बन्धन को तोड़ने के लिए सदा तैयार रहती हैं; शासन तनिक शिथिल होने पर समाज के पिँजड़े में एक भी कुलनारी नहीं दिखाई पड़ सकती।

उनके ऐसे विश्वास का एक कारण भी है। वह कारण जानने के लिए मनोहरनाथ की जवानी का इतिहास जानना परम आवश्यक है।

मनोहरनाथ जब कालेज में सेकिंड ईयर में पढ़ते थे तब आकार में और आचार में उनका दूसरा ही ढँग था। इस समय मनोहरनाथ के चोटी है और वे नित्य अपने हाथ से अपनी हजामत बनाकर सफ़ाई का परिचय दिया करते हैं। किन्तु उस समय सोने का चश्मा, फ़ैशनेबुल दाढ़ी और साहवी ढँग के बाल उनके मुख की शोभा बढ़ाते थे। उस समय सजधज पर विशेष दृष्टि थी, मद्य-मांस से अरुचि न थी और इसी के साथ की एक-आध लत और भी थी।

उनके घर के पास ही और एक गृहस्थ रहते थे। उनके चमेली नाम की एक विधवा लड़की थी। उसकी अवस्था चौदह-पन्द्रह वर्ष से अधिक न होगी।

समुद्र के भीतर से, वृक्षपंक्ति से श्यामल तटभूमि जैसे रमणीय स्वप्न के समान, चित्र के समान जान पड़ती है वैसे किनारे पर पहुँचने से नहीं। वैधव्य के घेरे की आड़ से चमेली संसार से जितना दूर हो गई थी उसी दूरी के अलगाव के कारण उसे संसार, पर-पारवर्त्ता परम रहस्यमय, प्रमोद-वन के समान जान पड़ता था। वह नहीं जानती थी कि इस जगत्पन्त्र के कल-पुञ्जें बहुत ही जटिल हैं और लोहे के समान ही कठिन हैं। वे सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति, संशय-सङ्कट, निराशा

और परिताप से ढले हुए हैं। उसे जान पड़ता था कि संसार में चलना कलनादिनी नदी के स्वच्छ जल-प्रवाह की तरह सहज है—सामने की पृथ्वी के सभी मार्ग प्रशस्त और सरल हैं। सुख केवल उसके घर के द्वार के बाहर है और तृप्तिहीन आकांक्षा केवल उसके धड़क रहे परिताप-पूर्ण कोमल हृदय के भीतर है। विशेष करके उम्र समय उसके अन्तर्गमन के दूर दिगन्त से एक जवानी की हवा ने उच्छ्वसित होकर सम्पूर्ण विश्व को विचित्र वसन्त की शोभा से विभूषित कर दिया था। सारा नील आकाश मानों उसी के हृदय की हिलोरों से पूर्ण हो गया था और पृथ्वी मानों उसी के सुगन्ध-मर्मकोष के चारों ओर रक्त कमल की कोमल पंखड़ियों के समान तह की तह विकसित हो रही थी।

घर में उसके माता-पिता और दो छोटे भाइयों के सिवा और कोई न था। दोनों भाई सबेरे खा-पीकर स्कूल चले जाते और स्कूल से आकर भोजन करने के बाद रात को नाइट-स्कूल में पाठाभ्यास करने के लिए जाते थे। बाप को थोड़ी सी तनख्वाह मिलती थी, घर में मास्टर बुलाने की सामर्थ्य न थी।

काम काज से फुर्सत मिलने पर चमेली अपने कमरे की खिड़की पर आकर बैठती थी। बैठे-बैठे सड़क पर लोगों का जाना-आना देखा करती थी। फेरी लगाकर सौदा बेचनेवाले तरह-तरह से आवाज़ लगाते चले जाते थे। उसको सुनकर वह समझती थी कि फेरीवाले, गद्गरीर और फ़क़ीर भी सुखी हैं।

सबेरे और तीसरे पहर, शाम को खूब सज-धज किये, गर्व से छाती फुलाये मनोहरनाथ भी उसकी नज़रों के सामने से गुज़रते थे। उसको

जान पड़ता था, इस उन्नत-मस्तक सुवेश सुन्दर युवक के सब कुछ है, और इसको सब कुछ दिया जा सकता है। बालिकाएँ, जैसे गुड़िया को सजीव मनुष्य मानकर खेलती हैं उसी तरह विधवा चमेली मनोहर को, मन ही मन सब प्रकार की महिमा से मण्डित करके, देवता समझकर खेलती थी।

कभी-कभी शाम को वह देखती थी कि मनोहरनाथ के घर में खूब रोशनी हो रही है, नाचने-गानेवाली के धुंधलकों का और गाने का शब्द गूँज रहा है। उस दिन वह मनोहरनाथ की दीवार पर प्रतिफलित होनेवाली चञ्चल परछाइयों की ओर लुब्ध दृष्टि से ताकती हुई बैठे ही बैठे रात बिता देती थी। उसका व्यथित पीड़ित हृत्पिण्ड, पिँजड़े के पत्ती की तरह, हृदयपिञ्जर के ऊपर दुर्दान्त आवेग से आघात किया करता था।

वह क्या अपने गढ़े हुए देवता को विलास में लिप्त रहने के कारण अपने मन में झिड़कती थी या निन्दा करती थी? नहीं, अग्नि जैसे पतङ्ग को नक्षत्रलोक का प्रलोभन दिखाकर अपनी ओर खींचता है वैसे ही मनोहरनाथ का वह प्रकाशित, गाने-बजाने से गूँज रहा, प्रमोद-मदिरा के उच्छ्वास से पूर्ण घर चमेली को स्वर्ग-मरीचिका दिखाकर अपनी ओर आकृष्ट किया करता था। वह अधिक रात को अकेली बैठी-बैठी उस घर के प्रकाश-छाया-सङ्गीत और अपने मन की आकांक्षा और कल्पना के द्वारा एक माया का जगत् गढ़ती थी और अपनी मानस-पुत्तलिका को उसी मायापुरी के बीच में बिठाकर विस्मित विमुग्ध दृष्टि से निहारती थी और अपने जीवन-यौवन, सुख-दुःख, इहकाल-परकाल आदि

सर्वस्व को वासना की आग में धूप की तरह जलाकर उस निर्जन सुनसान घर में मनोहरनाथ की पूजा किया करती थी। वह नहीं जानती थी कि उसके सामने के उस घर के भीतर—उस तरङ्गित प्रमोद-प्रवाह के बीच—एक अत्यन्त क्लान्ति, ग्लानि, पङ्किलता, वीभत्स लुधा और प्राणक्षयकर दाह है। विधवा को दूर से यह नहीं देख पड़ता था कि उस निद्राहीन रात्रि के प्रकाश के भीतर एक हृदयहीन निष्ठुरता की कुटिल हँसी प्रलय की क्रीड़ा किया करती है।

चमेली अपने सुनसान कमरे की खिड़की में बैठकर उस गायामय स्वर्ग और कल्पित देवता को लेकर अपनी सारी ज़िन्दगी इसी प्रकार के स्वप्न के आवेश में बिता दे सकती थी। किन्तु उसके दुर्भाग्य से देवता ने कृपा की और वह स्वर्ग निकटवर्त्ती होने लगा। स्वर्ग ने जब एकदम आकर पृथ्वी को स्पर्श किया तब स्वर्ग भी नष्ट हो गया और जिस व्यक्ति ने अकेले बैठकर स्वर्ग की कल्पना की थी वह भी नष्ट होकर मिट्टी में मिल गया।

इस विधवा पर कब मनोहरनाथ की लुब्ध दृष्टि पड़ी, कब उसको विनोदचन्द्र नाम से मिथ्या हस्ताक्षर करके चिट्ठी लिखकर मनोहरनाथ ने अन्त को शङ्कापूर्ण, उत्कण्ठा-पूर्ण अशुद्ध लिखा हुआ हृदय के उच्छ्वास और आवेग से भरा पत्र पाया; उसके बाद कुछ दिन घात-प्रतिघात, उल्लास-सङ्कोच, आशा और आशङ्का में किस तरह बीते; उसके बाद प्रलय-सदृश भयानक सुख की उन्मत्त अवस्था में सारा जगत् विधवा की दृष्टि के आगे कैसे-कैसे प्रलोभन लेकर आने लगा और उसी अवस्था में वह विधवा संसार को किस तरह भूल गई—उसके बाद अकस्मात् एक

दिन वह विधवा उस संसार से किस तरह अलग होकर दूर चली गई, इसका विस्तृत विवरण लिखने की कोई आवश्यकता नहीं ।

एक दिन, आधी रात के समय, माता-पिता, भाई और घर छोड़कर चमेली विनोदचन्द्र नामधारी मनोहरनाथ के साथ एक गाड़ी में सवार हो गई । देव-प्रतिमा जब उसके पास आकर बैठी तब लज्जा और धिक्कार के मारे चमेली मर सी गई ।

अन्त को गाड़ी जब हँक दी गई तब चमेली रोकर मनोहरनाथ के पैरों पर गिर पड़ी और कहने लगी—अजी मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम मुझे मेरे घर पहुँचा दो ! मनोहरनाथ ने दोनों हाथों से जल्दी से उसका मुँह दबा दिया । गाड़ी तेज़ी से चलने लगी ।

जल में डूबकर मर रहे मनुष्य को दम भर में जैसे जीवन की मृग घटनाएँ स्पष्ट देख पड़ने लगती हैं वैसे ही उस बन्द गाड़ी के अन्धकार के भीतर चमेली को याद पड़ने लगा कि भोजन के समय उसके पिता उसको सामने बिठलाये बिना भोजन न करते थे; याद पड़ा कि उसके छोटे भाई स्कूल से आकर उसी से खाने को माँगते थे, याद पड़ा कि सबेरे वह अपनी मा के साथ घर का काम-काज करती थी और शाम को मा अपने हाथ से उसकी चोटी बाँध देती थी । घर का हर एक कोना और हर दिन का हर एक छोटा काम उसे याद आने लगा—तब उसे अपना वह निराला जीवन और वह छोटा घर ही स्वर्ग जान पड़ने लगा । उस समय उसे घर का काम-काज करना, भोजन के समय पिता को पंखा झलना, दोपहर को माता की सेवा करना, भाइयों का

उपद्रव सहना—यही सब उसे परमशान्तिपूर्ण दुर्लभ सुख के समान जान पड़ने लगा ।

जान पड़ने लगा, पृथ्वी के हर एक घर में इस समय कुलकामिनियाँ गहरी नींद में सो रही होंगी । उस अपने घर में, अपनी खटिया पर, रात के सन्नाटे में निश्चिन्त निद्रा बड़े ही सुख की थी । हाय ! यह बात पहले से उसे क्यों न सूझी ! गृहस्थाँ की औरतें कल सबरे जागकर बिना किसी सङ्कोच के अपने नित्य के काम करने लगेंगी और घर से निकली हुई निद्राहीन चमेली की रात कहाँ जाकर समाप्त होगी ! उस निरानन्द प्रातःकाल में जब चमेली के घर सूर्यदेव का प्रकाश प्रवेश करेगा तब वहाँ सहसा कैसी लजा प्रकाशित हो पड़ेगी—कैसी लाञ्छना, कैसा हाहाकार जग उठेगा !

चमेली बहुत रोई-धोई; बहुत कुछ अनुनय-विनय करके उसने कहा—अभी रात बाकी है । मेरी मा और दोनों भाई अभी तक जागे न होंगे ! अभी तुम मुझे मेरे घर पहुँचा दो !

किन्तु उसके देवता ने इधर ध्यान नहीं दिया । एक सेकिंड क्लास की गाड़ी पर चढ़ाकर मनोहरनाथ उसे उसके चिरवाञ्छित स्वर्गलोक की ओर ले चले ।

थोड़ी देर के बाद ही देवता और स्वर्ग दोनों फिर एक दूसरी गाड़ी पर चढ़कर दूसरी ओर चले । विधवा गले-गले पाप में डूबकर गोते खाने लगी ।

(३)

मनोहरनाथ के पहले इतिहास से हमने यहाँ पर इस एक घटना का उल्लेख किया है । अश्लीलता के खयाल से अन्य घटनाओं का उल्लेख यह पर नहीं किया गया ।

इस समय उन गड़े मुद्दों को उखाड़ने की ज़रूरत भी नहीं । इस समय उस विनोदचन्द्र नाम को स्मरण रखनेवाला कोई आदमी जगत् में है या नहीं, इसमें सन्देह है । इस समय मनोहरनाथ शुद्ध आचारवाले हिन्दू हैं । वे नित्य तर्पण करते हैं और सदा शास्त्र की चर्चा किया करते हैं । अपने छोटे-छोटे लड़कों को भी योगाभ्यास कराते हैं और अपनी औरतों को सूर्य-चन्द्र-वायु की भी जहाँ गति नहीं उस अन्तःपुर में सुरक्षित रखते हैं । किन्तु एक समय उन्होंने कई रमणियों का अपराध किया था, इस कारण आज स्त्रियों के सब प्रकार के सामाजिक अपराधों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करते हैं ।

चुन्नी को फाँसी का हुकम देने के दो-एक दिन बाद भोजन-विलासी मनोहरनाथ जेलखाने के बाग़ से तरकारी वग़ैरह लेने के लिए वहाँ गये । उस समय यह जानने के लिए उन्हें कौतूहल हुआ कि चुन्नी अपने पतित जीवन के सब अपराधों का स्मरण करके पश्चात्ताप कर रही है या नहीं । जेल के भीतर जहाँ औरतें रक्खी जाती हैं वहाँ मनोहरनाथ गये ।

वहाँ दूर ही से उन्हें लड़ाई-भगड़े का केलाहल सुन पड़ा । भीतर जाकर देखा, चुन्नी पहर के सिपाही के साथ भगड़ा कर रही है ।

मनोहरनाथ अपने मन में हँसे। सोचा, स्त्रियों का स्वभाव ऐसा ही होता है ! मौत सिर पर है तो भी लड़ना-भगड़ना नहीं छोड़ती। ये शायद यमपुरी में जाकर यमदूतों से भी भगड़ा किये बिना न रहेंगी।

मनोहरनाथ ने सोचा, यथोचित भर्त्सना और उपदेश के द्वारा इस समय चुन्नी के हृदय में पश्चात्ताप पैदा करना उचित है। इसी माधु उद्देश्य से ज्योंही वे चुन्नी के पास गये त्योंही चुन्नी ने हाथ जोड़कर करुण स्वर से कहा—जज साहब, तुम्हारी दोहाई है ! इससे कटो, मेरी अँगूठी मुझे दे दे !

पूछने से मालूम हुआ, चुन्नी की चोटी के भीतर वह अँगूठी छिपी हुई थी। अचानक पहरेदार की उस पर नज़र पड़ी और उसने उससे वह छीन ली।

मनोहरनाथ फिर अपने मन में हँसे। कल फाँसी पर लटक जायगी तब भी अँगूठी का मोह नहीं छोड़ सकती ! गहना ही औरतों का सर्वस्व है !

पहरे के सिपाही से मनोहरनाथ ने कहा—‘कहाँ है अँगूठी, देखें।’ सिपाही ने उनको अँगूठी दे दी।

जैसे एकाएक जलता हुआ अङ्गारा किसी ने मनोहरनाथ के हाथ में रख दिया हो, इस तरह वे चौंक पड़े। अँगूठी में एक ओर हाथी-दाँत के ऊपर तेल के रङ्ग से अङ्कित दाढ़ी-मूँछवाले एक युवक का छोटा सा चित्र रक्खा हुआ था और दूसरी ओर सोने में खुदा हुआ था—विनोदचन्द्र।

तब मनोहरनाथ ने अँगूठी से नज़र उठाकर एक बार चुन्नी के मुख को अच्छी तरह देखा । चौबीस वर्ष पहले का और एक अश्रुपूर्ण प्रीति-कोमल सलज्ज-शङ्कित मुख याद आ गया । उससे यह चेहरा बहुत मिलता है ।

मनोहरनाथ ने फिर एक बार उस सोने की अँगूठी की तरफ़ देखा और उसके बाद धीरे-धीरे जब उन्होंने सिर उठाया तब उनके सामने वह कलङ्किनी पतित रमणी, एक छोटी सी सोने की अँगूठी की उज्ज्वल आभा से, स्वर्णमयी देवी-प्रतिमा के समान उद्भासित हो उठी ।

मध्यवर्तिनी

(१)

सुन्दर निहायत मामूली ढङ्ग का था। उसमें काव्यरस की गन्ध तक न थी। उसके मन में कभी यह बात नहीं आई कि जीवन में उक्त रस की कुछ आवश्यकता होती है। जैसे परिचित पुराने जूते के भीतर पैर बिलकुल निश्चिन्त भाव से प्रवेश करते हैं वैसे ही पुरातन पृथ्वी के भीतर सुन्दर अपने चिरभ्यस्त स्थान पर दल्लल जमाये हुए था। इस सम्बन्ध में कभी भूलकर भी उसने अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता, तर्क या तत्वालोचना को स्थान नहीं दिया।

सुन्दर सबेरे उठकर गली के किनारे घर के द्वार पर नंगे बदन बैठकर नारियल हाथ में लिये तमाखू पिया करता है। राह में लोग आते-जाते हैं, गाड़ी-घोड़े चलते हैं, फ़क़ीर गीत गाते भीख माँगते फिरते हैं। इन सब चञ्चल दृश्यों में वह अपने मन को बहलाये रखता है। उसके बाद यथासमय तेल लगाकर नहाकर, भोजन के पश्चात् कोट पहनकर, एक चिलम तमाखू जलाकर और एक पान खाकर वह दफ़्तर जाता है। आफ़िस से लौट आकर शाम को पड़ोसी शिवनाथ की बैठक में गम्भीर भाव से सायङ्काल बिताकर भोजन के उपरान्त सो रहता है। उस समय स्त्री पार्वती का सामना होता है।

उस समय पड़ोसी के लड़के के ब्याह में निमन्त्रितों के आदर की कमी, नव नियुक्त दासी की बदमाशी आदि बातों की उपयोगिता के सम्बन्ध में जो संक्षिप्त समालोचना होती है, आज तक किसी कवि ने उसे छन्दोबद्ध नहीं किया और उसके लिए सुन्दर को कभी क्षोभ भी नहीं हुआ ।

इसी बीच में फागुन के महीने में पार्वती बहुत बीमार पड़ गई । ज्वर किसी तरह पीछा न छोड़ता था । डाक्टर जितना ही कुनाइन देता था, बाधा को प्राप्त प्रबल स्रोत की तरह, उतना ही ज्वर की मात्रा बढ़ती जाती थी । इस तरह चालीस दिन तक पार्वती बीमार रही ।

सुन्दर का आफिस जाना बन्द था । शिवनाथ के बैठकघराने में भी बहुत दिनों से जाना नहीं हुआ । सुन्दर को कोई उपाय नहीं सूझता था । वह एक बार शयनगृह में जाकर रोगी की अवस्था पूछ आता है और फिर बाहर के बरामदे में बैठकर चिन्तित मुख लिये तमाशू पीने लगता है । नित्य नये डाक्टर-वैद्य की दवा बदली जाती है और जो जो कुछ बताता है वही रोगी को दिया जाता है ।

स्नेह की ऐसी अव्यवस्थित शुश्रूषा होने पर भी पार्वती आराम हो गई । किन्तु ऐसी दुर्बल और शीर्ण हो गई कि शरीर जैसे बहुत दूर से अत्यन्त क्षीण स्वर से कह रहा है कि “मैं हूँ ।”

उस समय वसन्त ऋतु का दक्षिण पवन चलने लगा था । और गर्मियों की चाँदनी भी स्त्रियों के खुले हुए सोने के कमरों में चुपचाप प्रवेश करने का अधिकार पा चुकी थी ।

पार्वती के कमरे के नीचे ही पड़ोसी के घर का बाड़ा था । वह कुछ विशेष रमणीय सुदृश्य स्थान नहीं कहा जा सकता । किसी समय किसी

ने शौक करके कई 'करोटन' के पेड़ लगा दिये थे, तब से उसने उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। एक ओर मचान पर कई कुँमड़े की बेलें फैली हुई थीं। बड़े भारी बेर के पेड़ के नीचे घास-फूस का जङ्गल सा लगा हुआ था। रसोईघर के पास दीवार टूटी हुई थी और वहाँ कुछ ईंटें ढेर थीं। उसी जगह पर कोयले और राख का ढेर दिन-दिन ऊँचा होता जाता था।

किन्तु इन दिनों कमरे में खिड़की के पास लेटकर, उसी बाग की ओर देखकर, पार्वती जो एक प्रकार का आनन्द पाती थी वैसा आनन्द इस ज़िन्दगी में उसे और कभी नहीं मिला। गर्मियों में स्रोत का प्रवाह धीमा पड़ने पर छोटी नदी जब बालू की शय्या पर दुर्बल शीर्ण होकर पड़ी रहती है तब वह जैसे अत्यन्त स्वच्छता प्राप्त करती है—तब जैसे प्रातःकाल की धूप उसके सर्वाङ्ग में व्याप्त हो रहती है, वायु का स्पर्श उसके सब अंशों को पुलकित बना देता है और आकाश के तागगण उसके स्फटिक-दर्पण के ऊपर सुख-स्मृति की तरह अत्यन्त स्पष्ट भाव से प्रतिबिम्बित होते हैं, वैसे ही पार्वती के क्षीण जीवन-तन्तु के ऊपर आनन्दमयी प्रकृति की हर एक उँगली जैसे फिरने लगी और हृदय के भीतर जो एक प्रकार का सङ्गीत सुन पड़ने लगा उसके ठीक भाव को वह अच्छी तरह समझ नहीं सकती थी।

ऐसे समय जब उसका स्वामी पास बैठकर पूछता था कि कैसी तबीयत है, तब उसकी आँखों में आँसू भर आते थे। रोगशिथिल चेहरे में उसकी दोनों आँखें बहुत बड़ी जान पड़ती थीं। उन्हीं बड़ी-बड़ी प्रेमाद्र कृतज्ञता-पूर्ण आँखों से स्वामी के मुख की ओर ताकती हुई

अपने हाथ में स्वामी का हाथ लेकर वह चुपचाप पड़ी रहती थी। स्वामी के हृदय में भी मानों कहीं से एक अपरिचित नवीन आनन्द की किरणें आकर प्रवेश करने लगती थीं।

इसी तरह कुछ दिन बीते। एक दिन रात को, दूटी दीवार की दरार से निकले हुए, छोटे से हिल रहे पीपल के पेड़ की शाखाओं के भीतर से भाँकता हुआ चन्द्रमा आकाश में ऊपर उठ रहा था, सन्ध्या-काल के सन्नाटे को मिटाकर एकाएक हवा चलने लगी थी, इसी समय प्रेमपूर्वक मुन्दरलाल के वालों के भीतर अङ्गुलि-सञ्चालन करती हुई पार्वती ने कहा—मेरे तो कोई लड़का-बाला नहीं हुआ, तुम और एक ब्याह कर लो।

पार्वती कुछ दिनों से यही बात मोच रही थी। मन में जब एक प्रबल आनन्द, एक बृहत् प्रेम का सञ्चार होता है तब मनुष्य समझता है कि मैं सब कर सकता हूँ। तब एकाएक किसी प्रकार का स्वार्थ-त्याग दिखाने की इच्छा प्रबल हो उठती है। स्रोत का उच्छ्वास ज्योंही कठिन तट के ऊपर वेग से आकर टकराता है त्योंही प्रेम का आवेग, आनन्द का उच्छ्वास एक महत् त्याग और बृहत् दुःख के ऊपर मानों अपने को फेंकना चाहता है।

ऐसी ही अवस्था में एक दिन, अत्यन्त पुलकित प्रसन्न मन में, पार्वती ने निश्चय किया कि मैं अपने स्वामी के लिए कोई बड़ा भारी स्वार्थत्याग दिखाऊँगी। किन्तु हाय ! जितनी माध होती है उतनी शक्ति किसमें है ! हाथ में क्या है; क्या दिया जाय ! ऐश्वर्य नहीं है, बुद्धि नहीं है, क्षमता नहीं है; केवल प्राण हैं, उन्हें अगर कहीं स्वामी के

लिए देना पड़े तो अभी देने को तैयार हूँ। किन्तु उन प्राणों का भी मूल्य क्या है ?

फिर पार्वती अपने मन में कहने लगी—और अगर अपने स्वामी को मैं एक दूध के समान गोरा, मक्खन के समान कोमल, बालक-कामदेव के समान सुन्दर स्नेह-पात्र बच्चा दे सकती ! किन्तु प्राणपण से इच्छा करके मर जाने पर भी तो वह नहीं कर सकती। तब पार्वती को यह खयाल आया कि स्वामी का दूसरा ब्याह करा सकती हूँ। उसने सोचा, स्त्रियाँ इस बात के लिए इतना कुदृती क्यों हैं, यह काम तो कुछ भी कठिन नहीं है। स्वामी को जो स्त्री चाहती है उसके लिए सौत को प्यार करना कौन सा कठिन काम है ! यह सोचकर उसका हृदय एक प्रकार के गर्व से फूल उठा।

सुन्दर ने अपनी स्त्री के मुख से जब यह अद्भुत प्रस्ताव सुना तब उसने उसे हँसकर उड़ा दिया। दूसरी तीसरी बार स्त्री के कहने पर भी उसने उधर कुछ ध्यान नहीं दिया। स्वामी की यह असम्मति और अनिच्छा देखकर पार्वती का सुख और विश्वास जितना ही बढ़ने लगा उतना ही उसकी प्रतिज्ञा और भी दृढ़ होने लगी।

उधर अपनी स्त्री के मुख से बारम्बार यह प्रस्ताव सुनकर सुन्दर के मन से उसके असम्भव होने का भाव दूर होने लगा और घर के द्वार पर तमाखू पीते-पीते सन्तान-परिवृत गृह का सुखमय चित्र उसके मन में उज्ज्वल हो उठा।

एक दिन आप ही यह प्रसङ्ग उठाकर सुन्दर ने कहा—बुढ़ापे में एक बालिका को ब्याहकर मैं पाल-पोसकर बड़ी न कर सकूँगा।

“इसके लिए तुमको चिन्ता न करनी होगी—मैं इस काम को अपने ऊपर लेती हूँ ।” यह कहते-कहते सन्तान-हीन पार्वती के मन में एक किशोर अवस्थावाली, सुकुमारी, लज्जाशीला, माता से शीघ्र ही बिलुड़ी हुई नव-वधू के मुख की छवि उदित हो आई और हृदय स्नेह से विगलित हो उठा ।

सुन्दर ने कहा—मेरे दफ्तर है, काम-काज है, तुम हो, बालिका-वधू को दुलराने की फुर्सत और उमङ्ग मुझे नहीं है ।

पार्वती ने बार-बार कहा—इसके लिए तुमको एक घड़ी नष्ट न करनी होगी, और अन्त को दिल्लगी के तौर पर कहा—अच्छा, तब देखूँगी, तुम्हारा काम कहाँ रहता है, तुम कहाँ रहते हो और मैं कहाँ रहती हूँ ।

सुन्दर ने इस दिल्लगी का उत्तर देने की कुछ आवश्यकता नहीं समझी—केवल सज़ा के तौर पर पार्वती के कपोल पर एक उँगली से टुनकार दिया । यह तो हुई भूमिका ।

(२)

एक छोटी सी बालिका के साथ अर्धेड सुन्दरलाल का ब्याह हो गया । उस बालिका का नाम था जानकी ।

सुन्दर ने सोचा, नाम बहुत मीठा है और मुँह भी दर्शनीय सुन्दर है । उसके भाव को, चेहरे को, चलने-फिरने को विशेष मनोयोग के साथ देखने की इच्छा होती है, किन्तु पार्वती के सामने वैसा किया नहीं जाता । बल्कि इसके विपरीत ऐसा भाव दिखाना पड़ता है कि इस नन्हीं सी औरत को ब्याहकर मैं तो बड़ी आफ़त में पड़ गया ।

सुन्दर के इस भाव को देखकर पार्वती अपने मन में बहुत ही प्रसन्न होती थी । कभी-कभी सुन्दर का हाथ पकड़कर कहती थी—अजी भागे कहाँ जाते हो ! यह छोटी सी बालिका कोई बाध नहीं है कि तुमको खा जायगी—

सुन्दर और भी व्यग्र भाव दिखाकर कहता था—अरे ठहरो, ठहरो, मुझे एक ज़रूरी काम है । यह कहकर वह ऐसा भाव दिखाता था जैसे राह नहीं मिलती । पार्वती हँसकर दरवाज़ा रोककर कहती थी—आज तुम भागकर जा नहीं सकते । अन्त को सुन्दर मानों बिलकुल ही निरुपाय होकर कातर भाव से बैठ जाता था ।

पार्वती उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहती थी—पराई लड़की को घर में लाकर इस तरह अश्रद्धा दिखाना ठीक बात नहीं है ।

यह कहकर जानकी को पकड़कर सुन्दर की बाईं ओर बिठलाती और ज़वर्दस्ती घूँघट खोलकर और ठोड़ी पकड़कर उसके झुके हुए मुख को ऊपर उठाकर सुन्दर से कहती थी—देखो, कैसा सुन्दर चाँद सा चेहरा है ।

किसी-किसी दिन दोनों को एक जगह बिठाकर काम का बहाना करके कमरे के बाहर चली जाती थी और बाहर से द्वार बन्द कर लेती थी । सुन्दर जानता था कि कौतूहल से पूर्ण दो आँखें किसी न किसी छिद्र से अवश्य भाँक रही होंगी । इसलिए वह अत्यन्त उदासीन भाव से करवट बदलकर (नवषधू की ओर मे मुँह फेरकर) सोने का ढोंग दिखाता था । जानकी घूँघट काढ़कर एक कोने में सङ्कोच के मारे लीन सी हो रहती थी ।

अन्त को पार्वती ने बिलकुल लाचार होकर इस बात को छोड़ दिया। किन्तु इससे वह कुछ अधिक दुःखित नहीं हुई।

पार्वती ने जब ऐसा करना छोड़ दिया तब स्वयं सुन्दरलाल ने इधर ध्यान दिया। यह बड़े ही कौतूहल और बड़े ही रहस्य की बात हुई। एक हीरे का टुकड़ा मिलने पर उसे तरह-तरह से घुमा-फिराकर देखने को जी चाहता है। किन्तु यह तो एक नौजवान सुन्दरी स्त्री का मन था—सुन्दरलाल के लिए बुढ़ापे में एक बहुत ही अपूर्व और स्पृहणीय पदार्थ था ! इसको कितनी ही तरह से छूकर, हाथ में लेकर, भीतर से, सामने से, इधर-उधर से देखना पड़ता है ! कभी एक बार कान का करनफूल हिलाकर, कभी घूँघट खोलकर, कभी बिजली की तरह चकित दृष्टि से देखकर और कभी नक्षत्र की तरह देर तक ताककर नवीन नवीन सौन्दर्यों की सीमा का आविष्कार करना पड़ता है।

मैकमोरन कम्पनी के दफ्तर के हेडक्लर्क श्रीयुत बाबू सुन्दरलाल को अब से पहले कभी ऐसा अभिज्ञता नहीं नसीब हुई थी। पहले जब ब्याह हुआ था तब वह बालक था। जब जवानी आई तब स्त्री उमके लिए चिरपरिचित थी। पार्वती को वह प्यार अवश्य करता था, किन्तु कभी उसके मन में इस तरह क्रम-क्रम करके प्रेम का सचेतन सञ्चार नहीं हुआ था।

एकदम पक्के आम में जो पतङ्ग पैदा हुआ हो, जिसे कभी रस की खोज न करनी पड़ी हो, जिसने थोड़ा-थोड़ा करके रस का स्वाद न लिया हो, उसे एक बार वसन्त ऋतु के विकसित फूल बाग में छोड़ दो—देखो,

अधखिले गुलाब के अधखुले मुख के पास चक्कर लगाने के लिए उसे कितना आग्रह होता है ! कुछ ही सुगन्ध और कुछ ही मधुर स्वाद मिलता है, लेकिन वह उसी में मस्त रहता है ।

सुन्दर पहले कभी विलायती चीनी के खिलौने, कभी एसेन्स की शीशी, कभी कुछ मिठाई बाज़ार से लाकर गुप्त रूप से जानकी को देने लगा । इस प्रकार दोनों में घनिष्ठता का सूत्रपात हुआ । अन्त को एक दिन पार्वती ने घर के काम से फुर्सत पाकर कमरे के द्वार पर आकर किवाड़े के छेद से देखा, सुन्दर और जानकी बैठे हुए पचीसी खेल रहे हैं ।

बुढ़ापे का यही खेल है ! सुन्दर सबरे भोजन आदि करके दफ़्तर गया था । लेकिन वास्तव में दफ़्तर न जाकर छिपकर घर में आ गया ! इस दगाबाज़ी की क्या ज़रूरत थी ! एकाएक जलती हुई सलाई से किसी ने मानों पार्वती की आँखें खोल दीं । उसके तीव्र ताप से आँखों का पानी भाप बनकर सूख गया !

पार्वती ने मन में कहा—मैंने ही आग्रह करके दूसरा ब्याह कराया, मैंने ही मिलन करा दिया और फिर मुझसे ही धोखेबाज़ी ! जैसा मैं ही दोनों के सुख में काँटा हूँ !

पार्वती जानकी को घर का काम-काज सिखाती थी । एक दिन सुन्दर ने स्पष्ट शब्दों में कहा — वह अभी बच्चा है । तुम उससे बहुत परिश्रम कराती हो; उसमें इतनी ताक़त नहीं है ।

बहुत ही तीव्र उत्तर को पार्वती मुख के पास लाकर लौटा ले गई । कुछ नहीं कहा ।

तब से पार्वती जानकी को घर के किसी काम में हाथ लगाने नहीं देती थी। रसोई आदि सब काम आप ही करती थी। ऐसा हुआ कि जानकी ने जगह से हिलना छोड़ दिया। पार्वती दासी की तरह उसकी सेवा करती थी और सुन्दर विदूषक की तरह उसका मनोरञ्जन करता था। घर का काम-काज करने की, अपने को छोड़कर दूसरे को देखने की, शिक्षा ही उसे नहीं हुई।

पार्वती जो दासी की तरह चुपचाप घर का काम करने लगी इसका उसे भारी गर्व था। उसके भीतर हीनता या दीनता नहीं थी। उसने कहा—तुम दोनों बच्चे मिलकर खेलो, घर के काम की देख-रेख मैं करूँगी !

(३)

हाय, आज कहाँ वह बल है जिस बल के भरोसे पार्वती ने सोचा था कि वह स्वामी के लिए सदा के वास्ते अपने प्रेम का आधा अधिकार सुख पूर्वक छोड़ देगी। एकाएक एक दिन पूर्णिमा की रात्रि को जब जीवन-प्रवाह में ज्वार आता है तब मनुष्य उमङ्ग के मारे समझता है कि मेरी सीमा कहीं नहीं है। तब वह जो बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर बैठता है, जीवन-प्रवाह के सुदीर्घ भाटे के समय उस प्रतिज्ञा की रक्षा करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मनुष्य अकस्मात् ऐश्वर्य के दिन में एक बार कलम चलाकर जो दान-पत्र लिख देता है, चिर-दारिद्र्य के दिन कौड़ी-कौड़ी करके वह दान चुकाना पड़ता है। तब जान पड़ता है कि मनुष्य बहुत ही हीन है, बहुत ही दुर्बल है। उसकी क्षमता बहुत ही साधारण है।

बहुत दिनों की बीमारी के बाद क्षीण रक्तहीन पीली पड़ गई पार्वती उस दिन शुक्लपक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा के समान एक शीर्ण रेखा-मात्र थी—संसार में बहुत ही हलकी होकर उड़ी-उड़ी फिर रही थी। उस समय उसे जान पड़ा था कि कुछ भी न हो तो मेरा काम चल सकता है। किन्तु धीरे-धीरे शरीर पुष्ट और सबल हो आया, रक्त का तेज बढ़ने लगा। उस समय पार्वती के मन में कुछ प्रवृत्तियों ने आकर कहा—तुमने तो दान-पत्र लिख दिया है, मगर हम अपना दावा किसी तरह नहीं छोड़ सकतीं।

पार्वती ने जिस दिन साफ़ तौर से अपनी अवस्था को समझ लिया उस दिन अपना कमरा सुन्दर और जानकी के लिए खाली करके आप दूम्गी कोठरी में अकेली जाकर सो रही।

तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में पहले पहल जिस पल्लव पर उसने पैर रखवा था, आज सत्ताईस वर्ष बाद उस शय्या का त्याग कर दिया। दीपक बुझाकर वह सधवा रमणी नवीन वैधव्य-शय्या पर लेट रही। उस समय गली के मोड़ पर एक शौक्लीन नौजवान विहाग की एक चीज़ गा रहा था, एक आदमी 'वायाँ' बजा रहा था और सुननेवाले इष्टमित्र हा हा हा हा करके हँसते और आनन्द प्रकट कर रहे थे।

वह गाना-बजाना उस चाँदनी रात में पास के कमरे में लेटे हुए सुन्दरलाल को बहुत अच्छा जान पड़ रहा था। उस समय बालिका जानकी नींद के मारे भ्रूम रही थी और आनन्द-गद्गद सुन्दर बार बार 'प्यारी, प्यारी' कहकर उसे सचेत करने की चेष्टा कर रहा था।

सुन्दर ने इसी बीच में बङ्किम बाबू का 'चन्द्रशेखर' उपन्यास पढ़ डाला था और वह दो-एक आधुनिक कवियों के शृङ्गार-सम्बन्धी काव्य भी जानकी को पढ़कर सुना चुका था ।

सुन्दर के जीवन की निचली तह में एक जवानी का 'भरना' दबा पड़ा हुआ था; आघात पाकर अकस्मात् वह बहुत ही कुसमय में उच्छ्वसित हो उठा । कोई इसके लिए तैयार न था । इसी कारण सुन्दर का बुद्धि-विवेक और उसकी गिरिस्ती का सब प्रबन्ध उलट-पुलट गया । वह बेचारा यह नहीं जानता था कि मनुष्य के हृदय के भीतर ऐसे उपद्रवजनक पदार्थ रहते हैं, ऐसी प्रचण्ड प्रवृत्तियाँ रहती हैं जो सब हिसाबकिताब, सब शृङ्खला-सामञ्जस्य नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं ।

केवल सुन्दर का ही यह हाल नहीं हुआ, पार्वती को भी एक नई वेदना का परिचय प्राप्त हुआ । यह काहे की आकांक्षा है—यह काहे की दुस्सह यन्त्रणा है ! इस समय मन जो चाहता है उसे उसने और कभी नहीं पाया और कभी चाहा भी नहीं । जब भले आदमियों की तरह सुन्दर नित्य आफ़िस जाता था, जब सोने के पहले कुछ देर तक गिरिस्ती के स्वर्च और काम-काज के बारे में और लौकिकता के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में पार्वती के साथ बातचीत करता था तब तो इस धरेलू लड़ाई का नाम-निशान भी न देख पड़ता था । वह पार्वती को चाहता ज़रूर था, लेकिन उस चाहने में कोई उज्ज्वलता, कोई जोश नहीं देख पड़ता था । वह चाहमा अग्निहीन ईंधन के समान अप्रकाशित ही था ।

आज पार्वती को जान पड़ा, उसे मानों कोई सदा से जीवन की सफलता से वञ्चित रखे हुए है। उसका हृदय मानों सदा से उपवास किये हुए है। उसका यह नारी-जीवन बड़ी ही गरीबी में कटा है। उसने केवल पान-मसाला तरकारी आदि के भूञ्जक में ही बहुमूल्य जीवन, दासी की तरह, बिता दिया है। आज ज़िन्दगी की राह के मध्यस्थल में आकर उसने देखा, उसी के सोने की कोठरी के पास एक गुप्त महत् ऐश्वर्य के भण्डार का ताला खोलकर एक छोटी सी बालिका राज-राजेश्वरी बनी बैठी है। स्त्री दासी अवश्य है, लेकिन उसके साथ ही वह रानी भी है। किन्तु उसमें हिस्सा लगाकर एक स्त्री रानी और दूसरी स्त्री दासी हुई, इससे दासी का गौरव नहीं रहा और रानी का सुख भी नहीं रहा।

क्योंकि जानकी को भी स्त्री-जीवन का यथार्थ सुख नहीं मिला। लगातार इतना अधिक आदर पाने में उसे भी किसी को स्नेह करने का अवसर नहीं मिला। समुद्र की ओर बहने में, समुद्र के बीच आत्म-विसर्जन करने में शायद नदी की बड़ी भारी सफलता है। किन्तु समुद्र यदि 'ज्वार' की उमङ्ग में आकर—उसके आकर्षण से आकृष्ट होकर—बराबर नदी की ओर ढुल पड़े तो नदी की सफलता नहीं है। उससे नदी ठीक राह पर न जाकर मनमानी राह से चलकर पास रहनेवालों के लिए कष्ट और दुःख का कारण बनेगी। सुन्दर अपने हृदय का सारा आदर लेकर दिन-रात जानकी की ओर आकृष्ट हो रहा, इससे जानकी का आत्माभिमान और सौभाग्य-गर्व दिन-दिन बढ़कर उचित सीमा को उल्लङ्घन कर चला। पति को चाहने का, उसका आदर करने का,

अवसर ही उसे नहीं मिला । उसने जाना, मेरे ही लिए सब है और मैं किसी के लिए नहीं हूँ । इस अवस्था में अहङ्कार तो यथेष्ट है, किन्तु तृप्ति कुछ भी नहीं ।

(४)

एक दिन खूब बादल घिरे हुए थे । ऐसी अँधेरी भुंक आई थी कि घर के भीतर कोई काम करना कठिन हो रहा था । बाहर पानी बरस रहा था । बर के पेड़ के नीचे का घास-फूस का जङ्गल पानी में डूब गया था और दीवार के पास नाली में बड़े शब्द से पानी का प्रवाह गिर रहा था । पार्वती अपनी निराली काठरी की खिड़की के पास चुपचाप बैठी हुई थी ।

इसी समय सुन्दर ने धीरे-धीरे चोर की तरह वहाँ प्रवेश किया । वहाँ पहुँचकर वह इस असमझस में पड़ गया कि पार्वती के पास जाऊँ या लौट जाऊँ । पार्वती ने उसकी उसकी इस हरकत पर ध्यान दिया, लेकिन मुँह से कुछ नहीं कहा ।

तब सुन्दर एकाएक एकदम तीर की तरह सीधा पार्वती के पास पहुँचा । और पहुँचते ही कह उठा कि कुछ गहनों की ज़रूरत है । ऋण बहुत सिर पर चढ़ गया है, महाजन उसके लिए अपमान करने को तैयार हैं, कुछ चीज़ें रेहन रखनी होंगी । चीज़ें शीघ्र ही लुड़ा दी जायँगी ।

पार्वती ने कुछ उत्तर नहीं दिया । सुन्दर चोर की तरह खड़ा रहा । अन्त को फिर उसने कहा—तो आज दे सकती हो ?

पार्वती ने कहा—नहीं ।

पार्वती की कोठरी में जाना जैसे कठिन था, वैसे ही वहाँ से बाहर निकलना भी कठिन था। सुन्दर ने इधर-उधर ताककर कहा—अच्छा तो और जगह कुछ उपाय करने जाता हूँ। यह कहकर वह चल दिया।

ऋण किससे लिया है और किसे गहने देने होंगे—यह बात पार्वती को अच्छी तरह मालूम थी। उसने सुना था, रात को जानकी ने बुद्धिहीन पोष्यपुरुष सुन्दर से झनककर कहा था—जीजी के सन्दूक भर गहने हैं और मुझे एक भी गहना नहीं मिला।

सुन्दर के चले जाने पर पार्वती उठी और सन्दूक खोलकर एक-एक करके सब गहने निकाले। जानकी को बुलाकर पहले पार्वती ने उसे अपने ब्याह की बनारसी सारी पहनाई। उसके बाद उसे सिर से पैर तक एक-एक करके सब गहने पहना दिये। अच्छी तरह चोटी बाँधकर पार्वती ने देखा तो उसे बालिका जानकी का मुख बहुत ही सुन्दर जान पड़ा—एक तुरत के पके सुगन्धित फल की तरह मधुर रसपूर्ण जान पड़ा।

जानकी जब गहने पहनकर उठकर झम-झम करती हुई वहाँ से चली गई तब वह शब्द बहुत देर तक पार्वती की नसों के रक्त में मानों झनकार मारता रहा। पार्वती ने अपने मन में कहा—और किस बात को लेकर तेरी और मेरी तुलना होगी। किन्तु एक समय मेरी भी यह अवस्था थी; मैं भी इसी तरह सिर से पैर तक जवानी के जोम में भरी हुई थी। किन्तु उस समय किसी ने उसकी खबर मुझे क्यों नहीं दी? कब वह दिन आया और कब चला गया, इसका समाचार एकबारगी

किसी ने मुझे नहीं दिया ! किन्तु वाह मुझसे एक बात भी न करके कैसे गर्व और गौरव के साथ जानकी चली गई !

पार्वती जब केवल गिरिस्ती को ही सब कुछ जानती थी तब ये गहने उसकी दृष्टि में बड़े क्रीमती थे ! तब भला क्या वह यों बेवकूफ की तरह ये गहने दम भर में दूसरे को सौंप देती ? किन्तु इस समय उस सब चीजों से वैराग्य सा हो गया है ।

सोने के गहने पहनकर जानकी अपने कमरे में चली गई—उसने दम भर के लिए भी यह खयाल नहीं किया कि पार्वती ने उसे क्या दे डाला । उसने सोचा कि चारों ओर से सब सेवा, सब सम्पत्ति और सब प्रकार का सौभाग्य स्वाभाविक नियम के अनुसार उसी को मिलना चाहिए । क्योंकि वह अपने पति की दुलारी जानकी है !

(५)

कुछ लोग ऐसे रोग से ग्रस्त होते हैं कि स्वप्न की अवस्था में अत्यन्त सङ्कट के मार्ग से चले जाते हैं, कुछ भी नहीं सोचते । अनेक जागते हुए हुए मनुष्यों को भी ऐसा ही रोग हो जाता है । उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहता । वे विपत्ति के तङ्ग रास्ते में बहुत ही निश्चिन्त भाव से अग्रसर होते हैं और अन्त को दारुण सर्वनाश के बीच जाकर जाग पड़ते हैं !

हमारे सुन्दरलाल की भी ऐसी ही दशा हुई । जानकी उसके जीवन-प्रवाह के बीच एक प्रवल 'भँवर' की तरह घूमने लगी और बहुत ही दूर से विविध बहुमूल्य पदार्थ आकृष्ट होकर उसके भीतर समाने लगे । केवल

सुन्दरलाल का मनुष्यत्व, मासिक वेतन, पार्वती का सुख-सौभाग्य और वस्त्राभूषण ही नहीं खिंचने लगे, बल्कि गुन रूप से मैकमोरन कम्पनी की रोकड़ भी खिंचकर आने लगी। धन तो उस रोकड़ से घटता था, लेकिन सुन्दरलाल को खुद यह नहीं मालूम था कि वह धन कहाँ चला जाता है। सुन्दर हर महीने यह सोचता था कि अब की महीने की तनख्वाह मिलने पर रोकड़ पूरी कर दूँगा; किन्तु तनख्वाह हाथ में आते ही उसी 'भँवर' के आकर्षण में पड़कर अन्त को दुश्मनी चवनी तक उमी में गायब हो जाती थी। इसी तरह धीरे-धीरे रोकड़ में से बहुत सी रकम गायब हो गई।

अन्त को एक दिन भण्डा फूट गया। पुश्तैनी नौकरी थी। साहब उसको बहुत चाहते थे। उन्होंने सुन्दरलाल को तहवील पूरी करने के लिए केवल दो दिन का समय दिया।

किस तरह धीरे-धीरे रोकड़ से ढाई हजार रुपये गायब हो गये, यह बात बहुत विचारने पर भी सुन्दर समझ न सका। एकदम पागल की तरह होकर वह दौड़ा हुआ पार्वती के पास गया। पार्वती के पास जाकर सुन्दर ने कहा—ग़ज़ब हो गया !

सब हाल सुनकर पार्वती का चेहरा पीला पड़ गया !

सुन्दर ने कहा—शीघ्र गहने निकालो।

पार्वती ने कहा—मैंने तो वे गहने जानकी को दे दिये !

सुन्दर बालक की तरह अधीर और रुआसा होकर कहने लगा—
तुमने उसे क्यों दिये ? क्यों दिये ? तुमसे किसने देने के लिए कहा था ?

पार्वती ने इसका ठीक उत्तर न देकर कहा —तो हानि क्या हो गई ? वे गहने कहीं चले थोड़े गये हैं ।

डरपोक सुन्दर ने कातर स्वर में कहा—हाँ, अगर तुम कोई बहाना करके उससे गहने निकाल सको तो अच्छी बात है । लेकिन तुम्हें मेरे भिर की क्रसम, उससे यह न कहना कि मैं गहने माँग रहा हूँ !

तब पार्वती अत्यन्त खीझ और घृणा के साथ कह उठी—यही तुम्हारे बहाना करने का—आदर दिखाने का—समय है । चलो !

यह कहकर स्वामी को साथ लिये पार्वती जानकी के कमरे में गई । जानकी ने एक बात न सुनी । हर बात का यही एक उत्तर दिया कि सो मैं क्या जानूँ !

दुनिया की कोई चिन्ता उसे करनी होगी—स्वामी की भलाई-बुराई पर ध्यान देना होगा, ऐसा वादा तो उससे किया नहीं गया था । सब अपनी-अपनी चिन्ता करें और सब मिलकर जानकी के आराम का खयाल रखें, ऐसा ही होना चाहिए । अकस्मात् उसके विपरीत होना कैसा बड़ा अन्याय है !

तब सुन्दर जानकी के पैर पकड़कर रोने लगा । किन्तु जानकी ने उसके उत्तर में यही कहा—यह कुछ मैं नहीं जानती । मैं अपनी चीज़ क्यों दूँ ?

सुन्दर ने देखा, यह दुबली-पतली सुन्दर सुकुमारी बालिका लोहे की सन्दूक की अपेक्षा भी कठिन है । सङ्कट के समय स्वामी की ऐसी कमज़ोरी देखकर पार्वती घृणा से कुद उठी । उसने जानकी से

जबर्दस्ती तालियों का गुच्छा छीन लेना चाहा । जानकी ने और उपाय न देखकर वह गुच्छा दीवार के उस तरफ तालाब में फेंक दिया ।

पार्वती ने बुद्धिहीन किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्वामी से कहा—देखते क्या हो, ताला क्यों नहीं तोड़ डालते !

जानकी ने निश्चिन्त भाव से कहा—तो मैं फाँसी लगाकर भर जाऊँगी !

सुन्दर ने कहा—रहने दो, मैं एक और उपाय करके रोकड़ पूरी करने की चेष्टा करूँगा ।

अब वह पागल की तरह बाहर चला गया । दो घण्टे के भीतर सुन्दर ने बाप-दादे का घर ढाई हजार रुपये में बेच डाला ।

बहुत मुश्किल से हाथों में हथकड़ियाँ पड़ना रुक गया, किन्तु नौकरी चली गई । स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति में केवल दो स्त्रियाँ बच रहीं । उनमें से जानकी गर्भवती होकर विलकुल ही स्थावर होकर पड़ गई । गली के भीतर किराये के एक छोटे से घर में गृहविहीन सुन्दर-चाल ने जाकर आश्रय लिया ।

(६)

जानकी के असन्तोष और असुख की सीमा नहीं रही । वह किसी तरह यह समझना नहीं चाहती कि उसके स्वामी में उसे सन्तुष्ट रखने की क्षमता नहीं है । क्षमता नहीं थी तो ब्याह क्यों किया था ?

ऊपर के खण्ड में केवल दो कमरे थे । एक कमरे में सुन्दर और जानकी के सोने का स्थान था । और दूसरे कमरे में पार्वती रहती थी ।

जानकी सदा सआसी होकर मिनमिनाकर कहा करती थी—इस गन्दे और छोटे घर में मैं रह नहीं सकती ।

सुन्दर मिथ्या आश्वास देकर कहता था—मैं और एक घर की तलाश में हूँ, शीघ्र ही घर बदलूँगा ।

जानकी कहती थी—क्यों, यह पास ही तो बड़ा मकान है ।

जानकी पहले जब अपने मकान में थी तब उसने पड़ोसियों से बात करना कैसा, कभी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा था । सुन्दर-लाल की वर्तमान दुर्दशा से व्यथित होकर पड़ोस की दो औरतें एक दिन जानकी के पास सहानुभूति प्रकट करने आईं । जानकी अपने कमरे के किवाड़ बन्द किये भीतर बैठ रही, किसी तरह कमरा नहीं खोला । उनके चले जाने पर उसने रो-भोकर भूखे-प्यासे रहकर आकाश सिर पर उठा लिया । इसी तरह के उत्पात प्रायः होने लगे । अन्त को जानकी का शरीर ऐसा अस्वस्थ हो गया कि वह मृत्यु के मुख के पास पहुँच गई । यहाँ तक कि गर्भपात होने का ढँग हो आया ।

सुन्दर ने पार्वती के दोनों हाथ पकड़कर कहा—तुम जानकी को बचाओ ।

पार्वती दिन-रात जी-तोड़ परिश्रम करके जानकी की सेवा और देख-रेख करने लगी । ज़रा भी त्रुटि होने पर जानकी पार्वती को दुर्वचन कहती थी । किन्तु पार्वती कुछ उत्तर न देकर चुपचाप सब सुन लेती थी ।

जानकी किसी तरह साबूदाना खाना न चाहती थी, पात्र समेत उठाकर उसे फेंक देती थी । ज्वर के समय इमली की चटनी खाने के लिए ज़िद करती अगर न मिलती तो रो-भोकर अनर्थ मचा देती थी ।

पार्वती उसे मेरी बहन, मेरी प्यारी बहन, कहकर बच्चों की तरह बहलाने की चेष्टा करती थी ।

किन्तु हजार चेष्टा करने पर भी जानकी की जान नहीं बची । दुनिया के दुलार, आदर को लेकर परम असुख और असन्तोष की अवस्था में बालिका के क्षुद्र असंपूर्ण व्यर्थ जीवन की ज्योति एक दिन बिना तेल के दीपक की तरह बुझ गई ।

(७)

सुन्दर को पहले तो हृदय में एक बड़ा भारी आघात प्राप्त हुआ । किन्तु वैसे ही उसने विचारकर देखा तो जान पड़ा कि उसका एक बड़ा कड़ा कष्टदायक बन्धन कट गया । शोक में भी अकस्मात् उसे एक प्रकार की मुक्ति के आनन्द का अनुभव हुआ । अकस्मात् उसे जान पड़ा कि इतने दिनों से उसकी छाती के ऊपर एक भारी पत्थर दबाया हुआ था । यों चैतन्य आते ही उसे अपना जीवन बहुत ही हलका जान पड़ा और उससे एक प्रकार का आराम मिला । वासन्ती लता की तरह यह जो कोमल जीवन-पाश टूट गया वही क्या उसकी प्यारी दुलारी जानकी थी ? सुन्दर ने विचारकर देखा, नहीं, वह उसके गले की फाँसी थी ।

और उसकी सदा की साथिन पार्वती ? सुन्दर ने देखा कि वही उसकी घर-गिरिस्ती पर अधिकार जमाये हुए, उसके जीवन के सारे सुख-दुःखों की स्मृति के मन्दिर के भीतर विराजमान है । किन्तु तो भी उसके और सुन्दर के बीच में एक विच्छेद की रेखा खिंच गई है । ठीक जैसे

एक छोटी सी उज्ज्वल सुन्दर निष्ठुर लुगरी आकर एक हृत्पिण्ड के दक्षिण और वाम अंश के बीच में एक वेदना-पूर्ण विदारण-रेखा खींच गई है ।

उस दिन अधिक रात बीतने पर जब सारा शहर नींद में खराटे ले रहा था, सुन्दरलाल धीरे-धीरे पार्वती के सोने के कमरे में गया । चुपचाप पुराने नियम के अनुसार पुराने पलंग के दक्षिण ओर वह सो रहा । किन्तु उसे अपने पुराने अधिकार के भीतर चोर की तरह चुपके-चुपके प्रवेश करना पड़ा ।

न तो पार्वती ने कुछ कहा और न सुन्दर ने ही । दोनों आदमी जैसे पहले पास ही पास सोते थे वैसे ही आज भी सोये । किन्तु दोनों के बीच में एक मृत बालिका का आत्मा मानों उपस्थित रहा । उसे कोई नहीं लाँघ सका ।

अत्याचार

ज़मींदार के नायब जानकीनाथ के घर में प्यारी नाम की एक मह-राजिन रसोई बनाने के लिए नौकर हुई। उसकी अवस्था कम थी और चरित्र अच्छा था। दूर की रहनेवाली वह ब्राह्मणी विपत्ति के फेर में पड़कर जानकीनाथ के घर आकर नौकर हुई ही थी कि एक दिन, मालिक की अनुराग-दृष्टि से अपने को बचाने के लिए, उसे मालकिन के आगे रोना पड़ा। मालकिन ने कहा—महाराजिन, तुम और कहीं नौकरी कर लो, यहाँ तुम्हारा रहना अच्छा नहीं।

किन्तु वहाँ से भाग जाना सहज नहीं था। पास पूँजी भी कई आने पैसे ही थी। इस कारण महाराजिन ने गाँव में चन्द्रभूषण भट्ट के यहाँ जाकर आश्रय लिया। समझदार लड़कों ने कहा—आप क्यों जान-बूझकर विपत्ति को अपने घर बुलाते हैं! भट्टजी ने कहा—विपत्ति यदि आप से आकर आश्रय की प्रार्थना करे तो मैं उसे विमुख लौटा देना उचित नहीं समझता।

एक दिन नायब साहब ने आकर भट्टजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—भट्टजी, आपने हमारी महाराजिन को क्यों अपने यहाँ रख लिया है? घर में रसोई बनानेवाले के बिना बड़ी दिक्कत हो रही है। इसके उत्तर में भट्टजी ने दो-एक सच्ची बातें कड़ाई के साथ सुना दीं। वह प्रतिष्ठित और सच्चे आदमी थे। किसी की खातिर से कोई बात घुमा-फिराकर कहने का उनको अभ्यास नहीं था।

नायब मन ही मन उस चींटी के साथ भट्टजी की तुलना करते चले गये जिसके पर निकल आते हैं। जाते समय खूब आडम्बर के साथ प्रणाम किया।

दो ही चार दिन के बाद भट्टजी के घर पुलिस पधारी। भट्टजी की स्त्री की तकिया के नीचे से नायब की स्त्री के जड़ाऊ करनफूल—चोरी का माल—बरामद हुए। महाराजिन चोर साबित होकर जेल गई। भट्टजी देशप्रसिद्ध प्रतिपत्ति के बल से चोरी का माल रखने के अभियोग में जेल गये बिना ही छुटकारा पा गये। भट्टजी ने निश्चय कर लिया कि मेरे आश्रय देने से ही महाराजिन की यह दशा हुई। उनके हृदय में यह बात काँटे की तरह खटकने लगी। लड़कों ने कहा, घर-बार छोड़कर कहीं बाहर चलिए। अब यहाँ रहना नहीं हो सकता। भट्टजी ने कहा—मैं बाप-दादे के घर को नहीं छोड़ सकता। जो भाग्य में बदा होता है वही होता है। विपत्ति कहाँ नहीं आ सकती ?

इसी बीच में नायब ने ज़मीन पर बहुत अधिक लगान बाँधने की चेष्टा की, इससे प्रजा ने विद्रोह खड़ा कर दिया। भट्टजी के पास जितनी ज़मीन थी वह दान में उन्हें मिली हुई थी। उसके साथ ज़मींदार का कुछ सम्बन्ध न था। नायब ने अपने मालिक से कहा—भट्टजी प्रजा को बहकाकर विद्रोही बना रहे हैं। ज़मींदार ने कहा—जिस तरह हो सके, भट्ट को नीचा दिखाओ। नायब फिर भट्ट के पास आये और उसी तरह प्रणाम करके कहा—भट्टजी, सामने की यह ज़मीन परगने की

सरहद में पड़ती है, वह आपको छोड़ देनी पड़ेगी। भट्ट ने कहा— यह क्या बात है ! वह तो बहुत दिनों से मेरी है।

भट्टजी के घर से मिली हुई ज़मीन के लिए ज़मींदार की ओर से नालिश हुई। भट्ट ने कहा—ज़मीन चाहे छूट जाय, मगर मैं बुढ़ापे में अदालत न जाऊँगा। लड़कों ने कहा—अगर यही ज़मीन छोड़ देंगे तो घर में कैसे रहेंगे ?

प्राणाधिक बाप-दादे के घर की ममता में पड़कर वृद्ध भट्टजी काँपते हुए इजलास के सामने हाज़िर हुए। मुन्सिफ़ साहब ने उन्हीं की गवाही पर विश्वास करके मुक़द्दमा डिसमिस कर दिया। भट्टजी की ज़मीन में रहनेवाली प्रजा ने इस उपलक्ष में बड़ा भारी उत्सव किया। भट्ट ने जल्दी से जाकर उन सबको ऐसा करने से रोका। नायब ने फिर आकर उसी तरह भट्टजी को प्रणाम किया और अपील रज़ू कर दी। वकील लोग भट्टजी से मेहनताना नहीं लेते थे। उन्होंने बारम्बार ब्राह्मण को आश्वास दिया कि मुक़द्दमे में हारने की कोई सम्भावना नहीं है। दिन क्या कभी रात हो सकता है ?

एक दिन नायब के यहाँ बड़ी धूमधाम से सत्यनारायण की कथा हुई। मामला क्या है ? भट्टजी को पीछे से वकील के द्वारा मालूम हुआ कि अपील में उनकी हार हो गई !

भट्टजी ने मत्था ठोंककर वकील से पूछा—आप क्या कहते हैं ? मेरी क्या दशा होगी ?

दिन किस तरह रात हो गया, इसका गूढ़ कारण वकील साहब ने इस तरह बतलाया—हाल में जो नये एडिशनल जज होकर आये हैं

वह जब मुन्सिफ़ थे तब उन मुन्सिफ़ साहब से, जिन्होंने भट्टजी के मुक़द्दमे का फ़ैसला किया था, उनकी खटपट थी। उस समय यह उनका कुछ नहीं कर सके थे। अब जब होकर आये हैं और इसीसे मुन्सिफ़ साहब के खिलाफ़ अपीलों का फ़ैसला करते हैं। इसी कारण आपकी हार हो गई।

व्याकुल भट्टजी ने पूछा—हाईकोर्ट में इसकी कुछ सुनवाई हो सकती है? वकील ने कहा—जज साहब ने ऐसी राय लिखी है कि हाईकोर्ट लड़ने से भी कुछ लाभ नहीं हो सकता! उन्होंने आपकी गवाही पर विश्वास न करके उधर की गवाही पर ही विश्वास किया है।

आँखों में आँसू भरे हुए वृद्ध ने पूछा—तो फिर मेरे लिए क्या उपाय है?

वकील ने बहुत ही विज्ञता के साथ सिर हिलाकर कहा—उपाय तो कुछ नहीं देख पड़ता।

दूसरे दिन नायब बड़ी धूमधाम से बहुत से आदमियों के साथ आकर भट्टजी को प्रणाम कर गया, और जाते समय कह गया कि प्रभु, तुम्हारी इच्छा!

क्षुधित पाषाण

मैं और मेरे एक आत्मीय एक दिन रेल पर बैठे हुए कलकत्ते जा रहे थे । इसी बीच में रेलगाड़ी पर एक आदमी से मुलाकात हो गई । उसका पहनावा मुसलमानों का सा था । उसकी बातें सुनकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता था । पृथ्वी की सभी बातों के विषय में वह इस तरह बातें करने लगा जैसे विधाता पहले उसी से सलाह करके सब काम किया करते हैं । विश्व-संसार के भीतर जो बहुत सी अश्रुतपूर्व गुप्त घटनाएँ होती हैं—जैसे रूसियों का भारत पर चढ़ाई करने का इरादा, अँगरेजों की गुप्त अभिसन्धि, देशी राज्यों की मूर्खता आदि—उनके बारे में कुछ न जानने के कारण हम लोग पूर्ण रूप से निश्चिन्त थे । हमारे नवपरिचित मित्र ने कुछ मुसकराकर कहा—There happen more things in heaven and earth, Horatio, than are reported in your newspapers.

घर से बाहर दूर जाने का यह पहला ही अवसर था । हम तो उसकी बातें सुनकर सन्नाटे में आ गये । वह आदमी साधारण बातचीत में कभी विज्ञान कहने लगता है, कभी वेद की व्याख्या करता है, कभी फ़ारसी की शेरें उड़ाने लगता है । विज्ञान, वेद और फ़ारसी में अपना कुछ दाखल न होने के कारण हमारी भक्ति उस पर उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । यहाँ तक कि हमारे थियासफ़िस्ट मित्र के मन में दृढ़ विश्वास

हो गया कि उस नवपरिचित का किसी अलौकिक व्यापार के साथ अवश्य कुछ सम्बन्ध है। वह अलौकिक व्यापार कोई अपूर्व मैग्नेटिज़्म अथवा दैवशक्ति, अथवा सूक्ष्म शरीर या इसी तरह का कुछ-न-कुछ है। वे इस असाधारण पुरुष की हर एक साधारण बात को भी भक्तिविह्वल मुग्धभाव से सुन रहे थे और चुपके से नोट करते जा रहे थे। मुझे जान पड़ा कि वह असाधारण पुरुष भी मेरे मित्र के भाव को समझ गया था और उसके लिए प्रसन्न भी हुआ था।

गाड़ी आकर जंकशन में ठहरी। हम लोग दूसरी गाड़ी की अपेक्षा में वेटिंग-रूम में जाकर जमा हुए। रास्ते में इंजिन का कोई पुर्जा बिगड़ जाने के कारण सुन पड़ा कि गाड़ी बहुत देर में आवेगी। मैं टेबिल के ऊपर बिछौना बिछाकर सोने की तैयारी कर रहा था, इसी समय उस असाधारण व्यक्ति ने निम्नलिखित वृत्तान्त वर्णन करना शुरू कर दिया।

राज्य-सञ्चालन के सम्बन्ध में दो-एक बातों में मत-भेद होने के कारण मैं रियासत जूनागढ़ का काम छोड़कर जब दक्खिन-हैदराबाद में निज़ाम के यहाँ नौकर हो गया तब मुझे कम उमर का मज़बूत आदमी देखकर पहले ही भरीच में रुई का महसूल वगूल करने की नौकरी दी गई।

भरीच बहुत अच्छी रमणीय जगह है। निर्जन पहाड़ के नीचे भारी जङ्गल के भीतर शुस्ता नदी (इसका संस्कृत नाम स्वच्छतोया है) पथरीले मार्ग में निपुण नर्तकी की तरह पग-पग पर टेढ़ी-मेढ़ी होकर तेज़ी से बहती हुई नाच रही सी जान पड़ती है। ठीक उसी नदी के किनारे

पहाड़ के नीचे पत्थर के १५०० सीढ़ीवाले घाट के ऊपर एक सङ्गमरमर का महल अकेला खड़ा हुआ है। उसके पास कहीं कोई आदमी नहीं रहता। भरीच का रुई का बाज़ार और गाँव यहाँ से दूर पर है। ढाई सौ वर्ष के लगभग हुए होंगे, जब दूसरे शाह महमूद ने अपने भोग-विलास के लिए वह महल ऐसे निर्जन स्थान में बनवाया था। उस समय इस महल के हम्माम में फुहारे से गुलाब-जल बरसा करता था और उसी शीतल एकान्त स्थान में सङ्गमरमर की चिकनी शिलाओं के ऊपर बैठकर कोमल नयन पदपल्लवों को जलाशय के निर्मल जल के ऊपर फैलाकर फ़ारिस की जघान बेगमें नहाने के पहले वाल खोलकर, सितार गोद में रखे, गज़लें गाया करती थीं।

इस समय न तो अब वे फुहारे छूटते हैं और न वह गाना होता है। सङ्गमरमर के फ़र्श पर वे सुन्दर चरण भी नहीं पड़ते। इस समय वह मुझ ऐसे निर्जनवास-भीड़ित सङ्कीर्ण महसूल-कलेक्टरों का अतिवृहत् और अतिशून्य निवासस्थान हो रहा है। किन्तु आफिम के बुड्ढे कर्मचारी करीम ख़ाँ ने मुझको बार-बार मना कर दिया कि मैं उस महल में न रहूँ। उसने कहा कि न माचूँ तो दिन को चाहे रहूँ, किन्तु रात को कभी भूलकर भी न रहूँ। मैंने ईंसकर उसकी बात को उड़ा दिया। नौकरों ने कहा, वे शाम तक काम करेंगे, किन्तु रात को उस घर में नहीं रहेंगे। वह घर ऐसा बदनाम था कि रात को चोर भी उसमें जाने का साहस न कर सकता था।

पहले पहल आने पर इस छोड़े हुए पत्थर के महल की निर्जनता मानों एक भयङ्कर भाव की तरह मेरी छाती पर बोझ सी रखी रहती

थी। जहाँ तक होता था, मैं बाहर ही रहता था और रात को थका हुआ आकर लेट रहता था।

किन्तु एक सप्ताह भी नहीं बीता होगा कि एक अपूर्व नशा मुझ पर आक्रमण करने लगा। अपनी उस अवस्था का वर्णन करना भी कठिन है और उस पर लोगों को विश्वास दिलाना भी कठिन है। वह महल एक सजीव पदार्थ की तरह मुझे मानों अपने भीतर के मोह-रस से धीरे-धीरे जीर्ण करने लगा।

जान पड़ता है, उस घर में पैर रखते ही इस प्रक्रिया का आरम्भ हो गया था। किन्तु मैंने सचेत अवस्था में जिस दिन इस भाव का अनुभव किया उस दिन की बातें स्पष्ट रूप से मुझे याद हैं।

उन दिनों गर्मियों की ऋतु का आरम्भ था—बाज़ार उतना चलता न था। मेरे हाथ में कुछ काम न था। सूर्य अस्त होने के कुछ पहले मैं उसी नदी के किनारे घाट के नीचे एक आराम-कुर्सी डाले बैठा हुआ था। उस समय शुस्ता का पाट बहुत कम रह गया था। दूसरे किनारे पर अनेक बालू के कगारे तीसरे पहर के सूर्य की आभा पड़ने से रङ्गीन हो रहे थे। इस किनारे घाट की सीढ़ियों की जड़ में, स्वच्छ उथले जल में, किरणें झिलमिल रही थीं। उस दिन हवा का लेश भी न था। पास के पहाड़ में उगे वन-तुलसी, पोदीना और सौंफ़ के जङ्गल से एक घनी सुगन्ध उठकर आकाश में व्याप्त हो रही थी।

सूर्य धीरे-धीरे पहाड़ के शिखर की आड़ में अदृश्य हो गये। उसी दम दिन की नाट्यशाला के ऊपर एक लम्बी छाया का ड्रापसीन पड़ गया। यहाँ पर्वत की आड़ रहने से सूर्यास्त के समय प्रकाश और छाया का

सम्मिलन अधिक देर तक नहीं रहता । घोड़े पर चढ़कर टहल आने के लिए उठने को कर रहा था, इसी समय सीढ़ियों पर पैरों की आहट सुन पड़ी । पीछे फिरकर देखा—कोई न था ।

कानों का भ्रम समझकर फिर बैठते ही एकदम अनेक पैरों की आहट सुन पड़ी—जैसे बहुत लोग दौड़ते हुए मेरी ओर आ रहे हैं । किञ्चित् भय के साथ एक अद्भुत रोमाञ्च से मेरा शरीर व्याप्त हो गया । यद्यपि मेरे सामने कोई साकार मनुष्य न था तो भी मुझे स्पष्ट प्रत्यक्ष के समान जान पड़ने लगा कि इस ग्रीष्म ऋतु के सायंकाल में बहुत सी प्रमोदचञ्चल स्त्रियाँ शुस्ता के जल में स्नान करने के लिए उतर रही हैं । यद्यपि इस सन्ध्याकाल में, पहाड़ के किनारे के सन्नाटे में, नदीतट पर के निर्जन महल में कहीं कुछ भी शब्द न था तो भी मानों मुझे स्पष्ट सुन पड़ा कि फुहारे की सैकड़ों धाराओं के समान कौतुकपूर्ण हास्य करती हुई एक के पीछे एक बहुत सी स्त्रियाँ स्नान करने के लिए मेरे पास से निकल गईं । मानों वे मुझसे शरमाईं नहीं । वे जैसे मेरे लिए अदृश्य हैं, वैसे ही मैं भी मानों उनके लिए अदृश्य हूँ । नदी पहले ही की तरह स्थिर थी । किन्तु मुझे स्पष्ट जान पड़ा कि शुस्ता का उथला जलप्रवाह अनेक आभूषण-मण्डित हाथों के द्वारा चञ्चल हो उठा है । वे स्त्रियाँ हँस-हँसकर परस्पर जल उलच रही हैं और तैरनेवालियों के पैरों की थपेड़ से जल-विन्दु मोती के समान उछल-उछलकर चमकते देख पड़ते हैं ।

मेरे हृदय में एक प्रकार की धड़कन होने लगी । मैं ठीक नहीं कह सकता कि वह उत्तेजना भय की थी या कौतूहल की । बड़ी इच्छा

हुई कि अच्छी तरह देखूँ, पर सामने देखने की कोई चीज़ नहीं थी। जान पड़ा, अच्छी तरह कान लगाकर सुनने से उनकी सब बातें स्पष्ट सुनी जा सकती हैं। किन्तु उस तरह कान लगाकर सुनने से भीगुरों की भनकार के सिवा और कुछ नहीं सुन पड़ा। जान पड़ा, ढाई सौ वर्ष पहले की कृष्णवर्ण यवनिका ठीक मेरे सामने पड़ी हुई है—डरते-डरते मैं बीच-बीच में एक किनारा उठाकर भीतर की ओर देखता हूँ—वहाँ औरतों की बड़ी भारी सभा लगी हुई है, लेकिन अन्धकार में कुछ स्पष्ट नहीं देख पड़ता।

एकाएक सन्नाटे को तोड़कर जोर से हवा का एक झोंका आया। शुस्ता का स्थिर जल देखते ही देखते परी के केशपाश की तरह संकुचित हो उठा और सन्ध्या की छाया से आच्छन्न वनभूमि दम भर में एक साथ ही मर्मर-ध्वनि करके मानों किसी दुःस्वप्न को देखते देखते जाग पड़ी। चाहे स्वप्न कहो, चाहे सत्य कहो, ढाई सौ वर्ष के अतीत काल से प्रतिफलित होकर मेरे सामने जो एक अदृश्य मरीचिका अवतीर्ण हुई थी वह दम भर में अदृश्य हो गई। जो मायामयी रमणियाँ मेरे पास से देहहीन द्रुत गति से शब्द-हीन उच्च हास्य करती हुई शुस्ता के जल में उतरी थीं वे भीगे कपड़ों से जल बहाती हुई मेरे पास से ऊपर उठकर नहीं गईं। हवा जैसे गन्ध को उड़ा ले जाती है वैसे ही वे उस हवा के झोंके से मानों उड़कर चली गईं।

तब मुझे बड़ी आशङ्का हुई कि शायद एकान्त में अकेले पाकर कविता देवी मेरे मस्तिष्क में घुस आई हैं। मैं बेचारा रुई का महसूल वसूल करके किसी तरह अपना पेट भरता हूँ, सर्वनाशिनी कविता शायद

मेरा सर्वनाश करने के लिए उद्यत है। मैंने अपने मन में कहा, आज अच्छी तरह भोजन करना चाहिए। पेट खाली रहने पर ही सब प्रकार के दुरारोग्य रोग आकर घेर लेते हैं। मैंने महाराज को बुलाकर कहा, आज खीर, हलवा और पूरी बनाओ।

दूसरे दिन सबेरे उल्लिखित व्यापार बहुत ही हास्य-जनक जान पड़ने लगा। प्रसन्न चित्त में साहबी 'सोला' टोपी पहनकर अपने हाथों से टमटम हाँककर मैं जाँच करने के काम पर गया। उस दिन त्रैमासिक रिपोर्ट लिखनी थी। इसलिए देर में डेरे पर आने का खयाल था। किन्तु शाम होने के पहले ही मानों कोई मुझे उस महल की ओर चलने के लिए घसीटने लगा। कौन घसीटने लगा, सो मैं बता नहीं सकता। किन्तु यह जान पड़ने लगा, अब देर करना ठीक नहीं है। जान पड़ा, वे सब मेरी प्रतीक्षा में बैठी हुई हैं। रिपोर्ट को वैसे ही छोड़कर, टोपी सिर पर रखकर, उस संध्या की आभा से धूसर और घने पेड़ों से परिपूर्ण शून्यमार्ग में टमटम दौड़ाता हुआ मैं उसी महल की ओर चला।

सीढ़ियों के ऊपर पहुँचते ही उस महल का सामने का हाल बहुत बड़ा था। इसमें तीन बड़े-बड़े ऊँचे खम्भे थे और उनमें बहुत सी कारीगरियों से पूर्ण तीन फाटकनुमा दर बने हुए थे। उनके ऊपर बड़ी भारी छत थी। यह सूनसान हाल सन्नाटे से भरा रहता था। उस दिन उस समय भी वहाँ रोशनी नहीं की गई थी। दरवाज़ा ठेलकर उस बड़े महल के भीतर जैसे ही मैंने प्रवेश किया वैसे ही जान

पड़ा कि घर के भीतर भारी घबराहट मच गई। मानों एकाएक सभा भङ्ग करके चारों ओर की खिड़कियों, दरवाज़ों और बरामदों से सब इधर-उधर भाग गईं। मैं कहीं कुछ न देखकर सन्नाटे में जैसे का तैसा खड़ा रह गया। शरीर में एक प्रकार के आवेश से रोमाञ्च हो आया। मानों बहुत दिनों की लुना-वशिष्ट अंतर की मृदु महक नासिका के भीतर आकर प्रवेश करने लगी। मैं उसी दीपहीन, जनहीन बड़े घर की प्राचीन पत्थर के खम्भों की क़तार के बीच खड़ा हुआ था। मुझे जैसे सुन पड़ा कि फ़ुहारा छूट रहा है और उससे निकला हुआ जल भरभर शब्द के साथ सङ्गमरमर के फ़र्श पर आकर गिर रहा है। सितार भी बज रहा है। कभी सोने के गहनों की झनक, कभी घुघुराओं की खनक, कभी घण्टा बजने का शब्द, कभी बहुत दूर पर शहनाई का मीठा सुर, कभी हवा से हिल रहे भाड़ों के शीशे परस्पर टकराने का शब्द, कभी पालतू बुलबुलों की आवाज़ और कभी वाग़ में बोल रहे पालतू सारसों का शब्द सुनकर मैं पागल सा हो उठा।

मेरे मन में एक प्रकार का मोह उपस्थित हुआ। जान पड़ा, यह अस्पृश्य अगम्य अवास्तव व्यापार ही जगत् में एकमात्र सत्य है, और सब मिथ्या मरीचिका है। मैं मैं हूँ—अर्थात् अमुक, अमुक का बड़ा लड़का, रुई का महसूल वसूल करके महीने में साढ़े चार सौ रुपये तनख़्वाह के पाता हूँ, मैं सोला टोपी पहनकर टमटम हाँकता हुआ दफ़्तर जाता हूँ—यह सब मुझे ऐसी अद्भुत अमूलक मिथ्या हँसी की बात जान पड़ने लगी कि शायद मैं उस विशाल निःस्तब्ध अन्धकार-पूर्ण हॉल के बीच खड़े हो हा हा हा हा करके हँस उठा।

उसी समय मेरा नौकर लैम्प जलाकर मेरे पास ले आया । मालूम नहीं, उसने मुझे पागल समझा या नहीं । किन्तु उसी घड़ी मुझे स्मरण हो आया कि मैं सचमुच अमुक का ज्येष्ठ पुत्र अमुक हूँ । यह भी मैंने अपने मन में सोच लिया कि इस बात को तो हमारे महाकवि और कविवर ही कह सकते हैं कि जगत् के भीतर अथवा बाहर कहीं मूर्तिहीन फुहारा नित्य छूटा करता है या नहीं, और किसी अदृश्य अंगुलि के आघात से किसी मायातन्त्री में अनन्त रागिनी वजा करती है या नहीं; किन्तु यह बात विलकुल सच है कि भरीच के बाज़ार में रुई का महसूल वसूल करके मैं महीने में साढ़े चार सौ रुपये की तनख्वाह पाता हूँ । तब फिर अपने पहले के मोह के स्मरण करके लैम्प से प्रकाशित कैम्प टेबिल के पास अग्न्यवार हाथ में लिये बैठा हुआ मैं कौतुक के साथ हँसने लगा ।

अग्न्यवार पढ़कर और खीर-पूरी-मोहनभोग छककर मैं एक कोने में बुझा हुआ लैम्प रखकर सो रहा । मेरे सामने की खुली हुई खिड़की के भीतर नज़र डालकर अन्धकारमय वन से घिरे हुए अराली पहाड़ के ऊपर एक अति उज्ज्वल नक्षत्र लाखों योजन की दूरी से खाट पर पड़े हुए मुझ महसूल-कलेक्टर की ओर ताक रहा था । इससे विस्मय और कौतुक का अनुभव करके-करते न जाने मैं किस समय सो गया । कब तक सोता रहा, यह भी नहीं मालूम । सहसा एकाएक काँपकर मैं जाग उठा । घर में कोई शब्द अवश्य हुआ था, किन्तु कोई आदमी न देख पड़ा । अन्धकारपूर्ण पर्वत के ऊपर से एकटक ताकने-वाला वह नक्षत्र अस्त हो चुका था और कृष्णपक्ष के क्षीण चन्द्रमा का

प्रकाश अनधिकार संकुचित म्लान भाव से मेरे शयनगृह के भीतर खिड़की के द्वारा घुस चुका था ।

कोई भी आदमी नहीं देख पड़ा, तब भी मुझे स्पष्ट जान पड़ा, कोई मुझे धीरे-धीरे रेल रहा है । मेरे जागते ही उसने कुछ न कहकर मानों केवल अपने अँगूठियों से अलंकृत अस्थिसार पाँच उँगलियों के इशारे से मुझे अत्यन्त सावधानी के साथ अपने साथ आने के लिए आज्ञा दी ।

मैं बहुत ही चुपके-चुपके उठा । यद्यपि उस सैकड़ों कोठों और कमरों से परिपूर्ण, प्रकाण्ड शून्यता से भरे, निद्रित ध्वनि और सचेत प्रतिध्वनि से व्याप्त बड़े महल में मेरे सिवा कोई आदमी न था, तथापि पग-पग पर यह भय होने लगा कि मेरे पैरों की आहट से कोई जाग न पड़े । महल के अधिकांश कमरे बन्द पड़े रहते थे और उन कमरों के भीतर मैं कभी गया भी न था ।

उस रात को साँस रोके चुपचाप पैर रखता हुआ मैं उस अदृश्य आह्वानकारिणी के पीछे-पीछे कहाँ जा रहा था, सो आज मैं स्पष्ट करके बतला नहीं सकता । कितने ही तङ्ग अँधेरे रास्ते, कितने ही लम्बे बरामदे, कितने ही गम्भीर निःस्तब्ध सुबृहत् सभागृह और कितनी ही बन्द ड्योढ़ियाँ लाँघकर मैं उसके पीछे जा रहा था ।

मेरी अदृश्य दूती यद्यपि मुझे आँखों से नहीं देख पड़ी तथापि उसकी मूर्ति मेरे मन के अगोचर न थी । वह अरब की औरत थी । ढीली आस्तीन के कुरते के भीतर मानों सङ्गमरमर के गढ़े हुए गोल

कठिन हाथ देख पड़ते थे। टोपी के किनारे से मुँह के ऊपर एक बुर्ज़ा पड़ा हुआ था। कमरबन्द में एक कटार लटक रही थी।

मुझे जान पड़ा, आरव्योपन्यास की एकाधिक सहस्र रात्रियों में से एक रात्रि आज उपन्यासलोक से उड़कर यहाँ आ गई है। मैं मानों अँधेरी आधी रात में, नींद में अचेत बग़दाद शहर की प्रकाशहीन तङ्ग गलियों में किसी सङ्कट-संकुल अभिसार की यात्रा कर रहा हूँ।

अन्त को मेरी दूती एक नीले रङ्ग के पर्दे के सामने जाकर सहसा खड़ी हो गई और मानों उँगली के द्वारा मुझसे उधर को इशारा किया। सामने कुछ भी न था, किन्तु भय के मारे मेरी छाती का खून जैसे जम गया। मैंने अनुभव किया कि उस पर्दे के सामने ज़मीन पर कमखाब की पोशाक पहने एक भयानक हवशी खोजा खुली तलवार पास रखे दोनों पैर फैलाये ऊँघ रहा है। दूती ने जल्दी से उसके पैरों को लाँघ-कर पर्दे का एक सिरा खींच लिया।

भीतर एक फ़ारसी ग़लीचे से सुशोभित फ़र्श का कुछ अंश देख पड़ा। तख़्त के ऊपर कोई बैठा था, किन्तु यह न देख पड़ा कि वह कौन है। केवल जाफ़रानी रङ्ग के ढीले पायजामे के नीचे ज़रतारी की जूती पहने दो छोटे से सुन्दर चरण गुलाबी मख़मल के आसन पर अलस भाव से रखे हुए देख पड़े। फ़र्श पर एक किनारे, एक नीले रङ्ग के बिल्लौरी पात्र में, कुछ सेब, नाशपाती, सन्तरे आदि फल और बहुत से अंगूरों के गुच्छे सजाये हुए रखे थे और उसके पास ही दो छोटे प्याले और एक अर्गवानी रङ्ग की शराब की बोतल मानों अतिथि के लिए

अपेक्षा कर रही है। एक तरह का नशा ला देनेवाली महक से परिपूर्ण अपूर्व धूप के धुएँ ने भीतर से आकर मुझे विह्वल बना दिया।

मैं धड़कते हुए कलेजे को हाथों से थामकर खोजा के फैले हुए पैरों को ज्योंही लाँघने चला त्योंही वह चौँककर जाग पड़ा—उसकी गोद पर रखी हुई तलवार पत्थर के फ़र्श पर झनकार के साथ गिर पड़ी।

सहसा एक विकट चीत्कार सुनकर मैं भी चौँक पड़ा। देखा, उसी अपनी खटिया के ऊपर मैं बैठा हुआ हूँ—शरीर से पसीना छूट रहा है। सबेरे के प्रकाश से कृष्ण पक्ष का चन्द्रखण्ड, जागने से क्लेश को प्राप्त रोगी की तरह, फीका पड़ गया है। और पागल मेहर अली, नित्य की प्रथा के अनुसार, तड़के जनशून्य मार्ग में “अलग रहो”, “हट जाओ” कहकर चिल्लाता हुआ चला जा रहा है।

इस प्रकार मेरे आरब्धोपन्यास की एक रात अकस्मात् समाप्त हो गई—किन्तु अभी और एक हजार रातें बाक़ी हैं।

मेरे दिन के साथ रात का एक भारी विरोध ठन गया। जागने की थकन से शिथिल शरीर लेकर दिन को काम करने जाता था, और उस समय शून्य-स्वप्नमयी मोहमयी मायाविनी रात को बहुत भयानके समझता था। किन्तु फिर शाम के बाद दिन के काम-काज में जकड़े हुए अस्तित्व को बहुत ही तुच्छ मिथ्या और हास्यकर समझने लगता था।

सन्ध्या के बाद मैं एक नशे के जाल में विह्वल भाव से फँस जाता था। सैकड़ों वर्ष पहले के किसी एक अलिखित इतिहास के अन्तर्गत और एक अपूर्व व्यक्ति हो उठता था। तब विलायती पोशाक मुझे नहीं रुचती थी। तब मैं कल्पना के द्वारा मानों सिर पर लाल मखमल

की टोपी देकर ढीला पायजामा, फूलदार काबा और रेशमी लम्बा चोगा पहनकर रूमाल में अतर लगाकर खूब सज-धज करता था और सिगरेट त्यागकर खूशबूदार तमाखू का तवा लेकर ऊँची गद्दीवाले एक बड़े मोढ़े पर बैठता था ।

उसके बाद अन्धकार जितना ही घना होता था उतना ही एक अद्भुत व्यापार होने लगता था । उसका ठीक-ठीक वर्णन मुझमें नहीं हो सकता । मानों किसी सुन्दर उपन्यास के कुछ टुकड़े वसन्त की एकाएक चलनेवाली हवा के द्वारा, उस विचित्र महल के विचित्र कमरों में उड़े-उड़े फिरते थे । कुछ दूर तक वे पाये जाते थे, उसके बाद फिर उनका अन्त न देख पड़ता था । मैं भी उन उड़कर घूम रहे विच्छिन्न अंशों का अनुसरण करता हुआ हर एक कमरे में जैसे घूमा-घूमा फिरता था ।

इस खण्डस्वप्न के आवर्त्त के भीतर—इसी हिना की महक, सितार के शब्द और सुगन्धित जल-कणों से मिले हुए पवन के झोंकों के बीच—एक नायिका को दम-दम भर पर बिजली की चमक के समान देख पाता था । उसका जाफ़रानी रङ्ग का पायजामा, उसके गोरे गुलाबी कोमल पैरों में कामदार जूती, वक्षःस्थल में फूलदार कसी हुई चोली, सिर पर लाल टोपी और उस टोपी से लटक रही सोने के तारों की झालर बहुत ही सुहावनी जान पड़ती थी ।

उसने मुझे पागल बना दिया था । मैं उसी के किराक में हर रात को नींद के पाताल-राज्य में स्वप्न के जटिल मार्गों से परिपूर्ण मायापुरी के बीच गली-गली और कमरे-कमरे में घूमता-फिरता था ।

कभी-कभी सन्ध्या के समय बड़े आईने के दोनों ओर दो लैम्प जलाकर बड़े यत्न से शाहजादों के समान सज-धज करता था। इसी समय अकस्मात् देख पड़ता था, आईने में मेरे प्रतिबिम्ब के पास पल भर के लिए मानों उसी ईरानी सुन्दरी की परछाहीं आकर पड़ती थी;—दम भर में गर्दन टेढ़ी करके, अपनी घनकृष्ण चौड़ी आँखों की पुतलियों के द्वारा सुगभीर आवेग-तीव्र वेदनापूर्ण आग्रह के साथ कटाक्षपात करके, सरस सुन्दर-रूप के कुँदरू ऐसे अधरों में एक अस्फुट भाषा का आभास मात्र देकर, लघु-ललित चञ्चलता से अपनी यौवन-पुष्पित देहलता को द्रुत वेग से ऊपर की ओर आवर्तित करके, वेदना वासना और विभ्रम की—हास्य-कटाक्ष और आभूषणों की चमक की—चिनगारियाँ बरसाकर वह उस शीशे में ही गायब हो जाती थी। पहाड़ी फूलों की सारी सुगन्ध लूटकर आई हुई हवा का एक भोंका आकर उन दोनों लैम्पों को बुझा देता था। मैं सज-धज करना छोड़कर वहीं पड़ी हुई शय्या पर लेट रहता था। मेरे शरीर में रोमाञ्च हो आता था और मैं आँखें बन्द कर लेता था। मेरे चारों ओर उसी हवा के बीच में—उस पहाड़ी फूलों की महक के बीच में—जैसे अनेक प्यार, अनेक चुम्बन, अनेक कोमल कर-स्पर्श उस निभृत अन्धकार को व्याप्त करके इधर-उधर घूमते-फिरते थे। कानों के पास मानों अनेक मधुर गुञ्जन सुन पड़ते थे, मेरे मस्तक पर मानों बहुत सी सुगन्धित साँसें आकर पड़ती थीं और मेरे कपोल को मानों एक मृदुसौरभ-रमणीय दुपट्टा बारम्बार उड़-उड़कर स्पर्श कर जाता था। धीरे-धीरे मानों एक मोहिनी मन्त्र जाननेवाली नागिन अपने मादक बन्धन से मेरी सब इन्द्रियों को जकड़ लेती थी।

मैं लम्बी साँस लेकर शिथिल शरीर को पलँग पर डालकर निद्रा से अभि-
भूत हो पड़ता था ।

एक दिन तीसरे पहर मैंने घोड़े पर चढ़कर घूमने जाने का इगदा किया, किन्तु न मालूम कौन मुझे वैसा करने के लिए मानों मना करने लगा । मगर उस दिन मैंने उस निषेध को नहीं माना । एक लकड़ी पर मेरा साहवी कोट और टोपी टँगी हुई थी । उसे उतारकर पहनने का उपक्रम कर रहा था । इसी समय शुस्ता नदी की बालू और अराली पहाड़ के ऊपर के सूखे पत्तों की पताका फहराकर अचानक एक बवंडर मेरे उस कोट और टोपी को मानों मेरे हाथ से छीनकर उड़ा ले गया । साथ ही मानों एक बहुत मीठी हँसी उसी बवंडर के साथ घूमते-घूमते—कौतुक के हर एक पदों में आघात करते-करते—उच्च से उच्चतर समक में चढ़कर सूर्यास्त के लोक के पास जाकर लीन हो गई ।

उस दिन फिर घोड़े की सवारी और सैर रह गई । मैंने उसी दिन से वह कोट और हैट पहनना बिलकुल छोड़ दिया ।

फिर उसी दिन आधी रात को मैं एकाएक पलँग पर उठकर बंठ गया । जान पड़ा, जैसे कोई फूल-फूलकर मर्म-भेदी दुःख से रो रहा है । जैसे मेरी खाट के नीचे, कर्श के नीचे, उस बड़े महल की पत्थर की दीवार के तले बनी हुई किसी अन्धकार-पूर्ण कुब्र के भीतर से कोई रो-रोकर कह रहा है—तुम मुझे यहाँ से निकालकर ले चलो—कठिन माया, गहरी नींद, निष्फल स्वप्न के सब द्वारों को तोड़-ताड़कर, घोड़े पर चढ़ाकर, छाती से लगाकर, वन के भीतर होकर, पहाड़ के ऊपर से

मुझे अपने सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित घर के भीतर ले जाओ ! मेरा उद्धार करो !

मैं कौन हूँ ! मैं किस तरह उद्धार करूँ ! मैं इस घूम रहे परिवर्तमान स्वप्न-प्रवाह के भीतर से किस द्रव्य रही कामना-सुन्दरी को किनारे खींच ले जाऊँ ! तुम कब थीं और कहाँ थीं ! हे दिव्यरूपिणी ! तुम किस शीतल भरने के किनारे, खजूर के पेड़ों के कुञ्ज की छाया में, किस गृहहीन अरब देश की रमणी के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं ! तुमको कौन लुटेरा, वनलता से पुष्पकली की तरह, माता की गोद से अलग करके बिजली की तरह भागनेवाले घोड़े पर चढ़ाकर मरुभूमि लाँघकर किस राजपुरी के दासियों के बाज़ार में बेचने के लिए ले गया था ! वहाँ किस बादशाह के नौकर ने तुम्हारे नवविकसित सलज्ज कातर यौवन की शोभा निरखकर अशर्कियों के मोल तुमको खरीदा था और उपहार के रूप में, पालकी पर चढ़ाकर, अपने मालिक की सेवा में पहुँचा आया था ! वहाँ का —बादशाह के अन्तःपुर का—क्या और कैसा इतिहास है ! वहाँ सारङ्गी के सङ्गीत, घुँघरुओं की झनकार, शीराङ्गी शराब के स्वाद और कटाक्षों की चोट के सिवा कुछ न होगा । एक ओर असीम ऐश्वर्य और दूसरी ओर अनन्त कारागार-वास रहा होगा । दोनों ओर दो बाँदियाँ खड़ी जड़ाऊ आभूषणों की बिजली चमका-चमकाकर चव्वर डुलाती होंगी, खुद शाहनशाह बादशाह तुम्हें मनाने के लिए, तुम्हारे मणि-मुक्ता-मण्डित कोमल चरणों पर बार-बार सिर रखते होंगे । बाहर के द्वार पर यमदूत के समान हवशी, देवदूत का सा पहनावा पहने, खुली तलवार हाथ में लिये पहरा दिया करता होगा । इसके बाद उस

रक्त-कलुषित ईर्ष्याफेनिल गड्यन्त्रसंकुल भीषण-उज्ज्वल ऐश्वर्य के प्रवाह में बहते-बहते तुम, मरुभूमि की पुष्पमञ्जरी, किस निष्ठुर मृत्यु के मुख में चली गई अथवा किस निष्ठुरतर महिमा-तट पर फेंक दी गई हो ?

इसी समय एकाएक वही पगला मेहर अली चिल्ला उठा—अलग रहो, हटे रहो, सब झूठ है, सब झूठ है। आँख खोलकर देखा, सवेरा हो गया था।

चपरासी ने सवेरे की डाक लाकर मुझको दी और महाराज ने आकर पूछा—आज क्या खाने को बनेगा ?

मैंने अपने मन में कहा—बस, इस घर में नहीं रहूँगा। उसी दिन अपना असबाब उठाकर आफ़िस के घर में ही जाकर डेरा डाला। आफ़िस का बुढ़्ढा नौकर अमीर खाँ मुझे देखकर कुछ मुसकराया। मैं उसके मुसकराने से खीझकर उगे कुछ उत्तर न देकर काम करने चला गया।

जैसे-जैसे सायंकाल निकट आने लगा, वैसे ही मैं अन्यमनस्क होने लगा। जान पड़ने लगा, मानों इस समय कहीं जाना है। रुई के महसूल का हिसाब जाँचने का काम बहुत ही अनावश्यक जान पड़ने लगा—निज़ाम की निज़ामत भी मुझे कुछ बड़ी बात न जान पड़ी। जो कुछ वर्तमान है, जो कुछ मेरे चारों ओर चलता-फिरता है, काम करता है वह सब मुझे अत्यन्त दीन, अर्थहीन तुच्छ जान पड़ने लगा।

मैं क्लम फेंककर, बड़ा रजिस्टर धम से बन्द करके उसी समय टमटम पर चढ़कर वहाँ से चल दिया। देखा, टमटम ठीक गोधूलि के समय आप ही उस पत्थर के महल के द्वार के पास आकर रुक गई। मैं जल्दी से सीढ़ियाँ चढ़कर यथास्थान पहुँच गया।

आज घर भर में सन्नाटा छाया हुआ था । अँधेरा घर मानों नाराज़ होकर मुँह फुलाये हुए था । पश्चात्ताप से मेरा हृदय परिपूर्ण हो उठा । किन्तु किसको वह अपना पश्चात्ताप जताता, किसको मनाता और किससे माफ़ी माँगता ? घर भर में सन्नाटा छाया हुआ था । मैं शून्य-हृदय लिये उस अँधेरे घर में इधर से उधर घूमने लगा । जी चाहने लगा कि कोई बाजा बजाकर किसी के उद्देश से इस आशय का गान गाऊँ कि हे अग्नि, जिस पतङ्ग ने तुमको छोड़कर भागने की चेष्टा की थी वह फिर मरने के लिए आया है ! अबकी उसे क्षमा करो, उसके दोनों पर जला डालो—उसे भस्म कर दो !

एकाएक ऊपर से मेरे मस्तक पर किसी की आँखों के आँसुओं के समान दो बूँद आकर गिर पड़े । उस दिन अरावली पहाड़ की चोटी पर खूब बादल घिरे हुए थे । अँधेरा जङ्गल और शुष्ता का स्याही के समान काले रङ्ग का दिखाई पड़ रहा पानी दोनों, किसी भीषण प्रतीक्षा में, स्थिर थे । सहसा जल, स्थल और आकाश जैसे काँप उठे और अकस्मात् बिजली की चमक के साथ आँधी, जंजीर तुड़ाकर भागे हुए सिड़ी की तरह, पथहीन दूरवर्त्ती जङ्गल के भीतर से आर्त्तनाद का चीत्कार करती हुई उसी मकान की ओर आई । उस महल के सूने कमरों के किवाड़े भड़ाभड़ा होने लगे । मानों कोई छाती पीट-पीटकर विलाप कर रहा हो ।

आज मेरे भी नौकर दफ़्तरवाले मकान ही में थे । इस महल में लैम्प और उसको जलानेवाला कोई न था । उस बादलों से घिरी हुई अमावस की रात को कसौटी के पत्थर से भी काले घने अन्धकार के बीच मैं स्पष्ट अनुभव करने लगा कि एक रमणी पल्लंग के नीचे ग़लीचे पर पट

पड़ी हुई अपने बालों को नोच रही है, उसके मस्तक से रुधिर बह रहा है। कभी वह शुष्क तीव्र अट्टहास करके हँस उठती है और कभी फूल-फूलकर रोती है—क्रीमती चोली फाड़कर दोनों हाथों से छाती पीटती है। खुले हुए किवाड़ों से हवा के झोंके भीतर आ रहे हैं और पानी की बौछारें भीतर आ-आकर उसके शरीर को भिगो रही हैं।

रात भर आँधी-पानी नहीं रुका और वह आवेश-राज्य का रोना-विलखना भी बन्द नहीं हुआ। मैं निष्फल पश्चात्ताप के साथ अँधेरे में एक कमरे से दूसरे कमरे में घूमने लगा। कहीं भी कोई न था। किसे समझाता और मनाता? यह प्रचण्ड रूठना किसका है? यह अशान्त आक्षेप कहाँ से उठ रहा है?

इसी बीच में पगला मेहर अली चिल्ला उठा—अलग रहो, हटे रहो, सब भूठ है, सब भूठ है!

मैंने देखा, तड़का हो आया है और मेहर अली इस घोर दुर्दिन में भी, अपने नियम के अनुसार, उस महल के चारों ओर घूमकर वही सदा की 'सदा' लगा रहा है। एकाएक मुझे जान पड़ा, शायद मेहर अली भी किसी समय मेरी ही तरह इस महल के भीतर रह चुका है; अब पागल होकर बाहर निकलकर भी इस पाषाण-राक्षस के मोह से आकृष्ट होकर नित्य सबेरे इसकी प्रदक्षिणा करने आता है।

मैं उसी दम, उसी वर्षा में, पगले के पास दौड़ा गया और उससे पूछा—मेहर अली, क्या भूठ है?

वह मेरी बात का कुछ उत्तर न देकर मुझे आगे से हटाकर—अजगर के मुँह के पास मोह के आवेश से घूम रहे पक्षी की तरह—

चिल्लाता हुआ उस महल के चारों ओर घूमने लगा । केवल प्राणपण से अपने को सावधान करने के लिए बार-बार यह कहता जाता था कि अलग रहो, हटे रहो, सब भूठ है—सब भूठ है !

मैं उसी आँधी-पानी में पागल की तरह आफ़िस जाकर करीम ख़ाँ से बोला—इसका क्या अर्थ है, मुझसे खुलासा करके कहो ।

वृद्ध करीम ख़ाँ ने जो कहा उसका सारांश यही था कि उक्त बादशाही महल में एक समय अनेक अतृप्त वासना और अनेक उन्मत्त-सम्भोग की ज्वालाएँ उठा करती थीं । उन्हीं सब दिलों की जलन से—उन सब निष्फल कामनाओं के अभिशाप से—इस महल का हर एक पत्थर भूखा और प्यासा हो रहा है । सजीव मनुष्य को पाकर, लुब्ध पिशाच की तरह, उसे वह महल मानों लील लेना चाहता है । जो तीन रात तक इस महल में रहा है वह फिर बाहर नहीं निकला । हाँ, केवल मेहर अली पागल होकर बाहर निकल आया है ।

मैंने पूछा—अब मेरे उद्धार की क्या कोई राह नहीं है ?

वृद्ध ने कहा—केवल एक उपाय है, लेकिन वह बहुत कठिन है । सुनो, किन्तु वह उपाय बताने के पहले गुलबारा की एक ईरानी बाँदी का कुछ पुराना इतिहास कहना ज़रूरी जान पड़ना है । वैसा आश्चर्य और वैसी हृदय-विदारक घटना जगत् में दूसरी नहीं हुई होगी ।

*

*

*

इसी समय कुलियों ने आकर खबर दी कि गाड़ी आ रही है । इतनी जल्दी ? जल्दी के साथ बिछौने-बिस्तर वगैरह बाँधते-बाँधते गाड़ी आ

गई। उस गाड़ी के भीतर फ़र्स्ट क्लास में एक सोकर तुरन्त उठा हुआ अँगरेज़, खिड़की के भीतर से सिर निकाले हुए, स्टेशन का नाम पढ़ने की चेष्टा कर रहा था। हमारे सहायात्री उक्त पुरुष को देखते ही “हल्लो” कहकर वह खुशी से चिल्ला उठा। उस अँगरेज़ ने उक्त पुरुष को अपने पास बिठा लिया। हम लोग भी सेकेंड क्लास की गाड़ी पर सवार हुए। उक्त पुरुष का फिर पता नहीं लगा और इस क्रिस्से का शेष अंश भी सुनने को नहीं मिला।

मैंने अपने थियासफ़िस्ट मित्र से कहा—वह आदमी हम लोगों को गूँगे के समान देखकर बेवकूफ़ बना गया है। यह क्रिस्सा शुरू से अख़ीर तक बनाया हुआ है।

इस तर्क के कारण थियासफ़िस्ट मित्र के साथ जन्म भर के लिए मेरी खटपट हो गई।



